

५२
६

3252

श्री सूरश्याम नाटक ।

—❁❁❁❁❁—
* प्रथम भाग *

जिसे मुल्तान निवासी

बाबू आत्मारामात्मज बल्लभदास वर्मा

ने

रच कर आगरे के राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल

प्रेस में मुद्रित कराया ।

—❁❁❁❁❁—

जिस्ट्री कराई गई है इसलिये

पाने का अधिकार नहीं है ।

0152, 2VAR, 1
NA. 1

संस्करण १०८० प्रति

मूल्य १)

कवित्त ।

चाहे जोग कर तू भृकुटी मध्य ध्यान धर
 चाहे नाम रूप सिध्या जान के निहार ले ।
 निर्गुण निर्भय निराकार ज्योति व्याप रह्यो
 ऐसी तत्व ज्ञान निज मन में तू धार ले ॥
 नारायण अपने को आप ही बखान कर
 सोते वह भिन्न नहीं या विध पुकार ले ।

0152,2VAR,L 105
 NA. 1
 Varma, Vallabhdas.
 Shri Surshyam natok

नहीं दृष्टि परे ।
 ब्रह्म को विचार ले ॥ १ ॥

वक छवै
 द्वा रसपाती के परसते ।
 हा होत
 कंचन पाहन के परसते ॥
 होत
 अति कीट के तरसते ॥
 कौन
 चाहे कृष्ण के दर्शते ॥ २

॥ श्री जी ॥

हे ! हे !! हिन्दी भाषा के रसिकवृन्दो !

कहिये आप को रिक्ताने का क्या उपाय है ? क्योंकि मैं आप लोगों को रिक्ताया चाहता हूँ । क्या आप किसी प्रकार से रीक्त नहीं सकते ? यदि रीक्त सकते हो तो उपाय बताइये ? मुझे तो इस के सिवाय और कोई उपाय नहीं सूझता कि नये २ उपन्यास नाटक लिख के सन्मुख आज, कभी न कभी आप लोगों की शुभ दृष्टि मुझ पर पड़ ही जायगी । कदाचित् किसी मार्मिक शब्द से आप रीक्त जाय किन्तु मुझे कैसे विदित हो कि आप रीक्ते या खीजे अतएव कृपा कर के एक पोस्टकार्ड द्वारा अपनी रीक्त बूझ की सूचना देने की सौजन्यता प्रकट करियेगा ।

स्मरण रहे कि ऐसे भावपूर्ण नाटक उपन्यास तैयार हो रहे हैं जिन को देख कर आशा है कि आप परम सन्तुष्ट होंगे ।

इस बात का विचार रखें कि कहीं मुझे ऐसा न कहना पड़े कि 'गुण ना हिरानो गुण ग्राहकता हिरानी है।'

आप लोगों का कृपाभिलाषी

ग्रन्थकार

॥ श्री जी ॥

* समर्पण *

0152,2VAR,1

NA.1

प्यारे !

न जाने उस अलौकिक परमानन्दमय रहस्य लीलाओं
के सर्वोपरि सुख का हमें भान कब कराओगे ।

आज उसी महान् अपूर्व मनोहर सुख की प्राप्ति
हेतु यह लघु नाटक श्री चरण युगलों में समर्पित करने
का आप के दासानुदास को सौभाग्य प्राप्त हुआ है सो
हे आनन्दघन परमानन्द पूर्ण काम पूर्ण पुरुषोत्तम भक्त-
वत्सल प्रभु यह त्वदीय वस्तु आप के अर्पण है । “ मेरो
तो है नाम सबै रचना तिहारी है । ”

दासानुदास

आत्मारानात्मज वल्लभदास

SRI JAGADGURU VISHWAKARADHYA

JNANA SIMHASA JI ANAMANDIR

LIBRARY.

Jangamwadi Math, VARANASI.

Acc. No. ~~325~~

105

परम मनोहर होगा । उस में भगवद्गुणानुवाद उत्तमता
से होगा सो उस के लिये ग्राहक बन बना के मेरा
उत्साह बढ़ाइये जिस में वह शीघ्र प्रकाशित हो जाय ।

मुख्य २ नाटक पात्रों के नाम ।

श्याम सु०—भक्तवत्सल भगवान् ।

नारद—महामुनि ।

विरव सं०—संगीत विद्या के भूषण रामदास जी के पुत्र
जो पीछे से सूरदासजी के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

सोमगिरि—उस समय के भगवत् उपासक महात्मा ।

चन्द्रसिंह—नगर के देशाधिपति ।

प्रभावती—वि० सं० की स्त्री ।

चिन्तामणि—गणिका की आज्ञानुसार बर्तने वाली ।

माया—जिसने जगत् को भुला रखा है ।

संगला गौरी—श्रीघड़ शाह सेठ की स्त्री ।

श्रीघड़ शाह—संगला का पति ।

कुटिला—नायिका ।

मन्दमति—चन्द्रसिंह का दीवान ।

नरवर सिंह उनकी पुत्रियां आदि २

भूमिका ।

इस नाटक की भूमिका में मुझे इतना अवश्य कहना उचित है कि बांका नेर आर्यहितवर्द्धक नाटक मंडली ने अनुमानतः ८-९ महीने हुए कराची नगर में गुजराती भाषा में यह अभिनय कर के दिखाया था जिस समय मैं ने देखा उसी समय उक्त गुजराती खेल की छाया लेकर हिन्दी भाषा में इसे लिखना प्रारम्भ किया। शीघ्रता से छपने के कारण यदि कहीं कोई अशुद्धियां दृष्टिगत हों तो सुधार लें ।

यदि आपने इसे पसंद किया तो द्वितीय संस्करण में यह शुद्धता पूर्वक दुगने आकार में आप लोगों की सेवा में उपस्थित हो सकेगा ।

अन्त में यह बात भी आप लोगों को अवश्य कह देनी है कि इस "सूरप्रयास नाटक" के इस समय दो ही अंक प्रकाशित हुए हैं । इसी से इस का नाम सूरप्रयास नाटक प्रथम भाग रक्खा है । तृतीय अंक अभी नहीं छपा । हमारी इच्छा इस के तृतीय अंक के साथ सूरदास जी का जीवन-चरित्र लिख कर उन के बहुत से चरित्र और जिस २ समय जो जो पद उन्होंने ने गाया है उन को संग्रह कर के प्रकाशित करने की है सो इस का दूसरा भाग जिस में सूरदास जी का जीवन-चरित्र और इस नाटक का अगतिम तृतीय अंक छपेगा वह

छप रहे हैं ।

नरसी सहता नाटक—जूनागढ़ निवासी भक्तराज के
प्रसिद्ध चरित्रों का मूर्तिमान दृश्य ।

वैरिस्टर उपन्यास—नवशिक्षितों का मूर्तिमान दृश्य ।

द्युतपरिणाम उपन्यास—जूए खेलने का नतीजा
देखना हो तो इसे अवश्य देखो ।

सच्चा उपन्यास—द्वितीय भाग अवश्य देखने योग्य ।

द्रव्योपार्जन करने के सहज उपाय—यथा नाम
तथा गुण ।

हम केवल एक आने में इसे इसलिये लुटा देंगे कि
सर्व साधारण को इस से लाभ मिल सके ।

पत्र इत्यादि इस पते पर भेजिये:—

आत्मारामात्मज वल्लभदास वर्मा

सेठ गोबरधन दास का मारकेट

कराची ।

अवश्य देखिये ।

संकेत तार भाग १ (हिन्दी और अंगरेजी दोनों में एक साथ) यदि आप अपने व्यापार का भेद मन्त्रों की तरह गुप्त रखना चाहते हैं और संकेत प्रथा सीखना चाहते हैं, व्यापार विषय में अनुभव करने की यदि आप को उत्कण्ठा हो तो एक दफे इसे अवश्य देखो काशी के बाबू गणेशदास एन्ड को० से ३॥) में मिलती है ।

श्री विष्णु भक्ति विजय (कलियुग दर्शन नाटक) यदि वर्तमान कलियुग का सच्चा दृश्य देखना हो तो इसे अवश्य पढ़ो । मूल्य केवल ॥)

सच्चा उपन्यास भाग १—अपघाती सच्ची कहानी को उपन्यास के ढंग पर लिखा है । यह उपन्यास ३० हिस्सों में समाप्त होगा । अभी इस का प्रथम भाग मुम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस में छपा है । वहीं से मिलता है ।

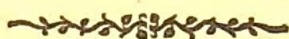
छप गई ! छप गई !! छप गई !!!

हमें भगवत्भक्ति क्यों करनी चाहिये ? यदि ऐसी शंका होती हो अथवा ऐसी शंका करने वालों को मुंह तोड़ उत्तर देने की आप को इच्छा होती हो तो इसे अवश्य देखिये । इस व्याख्या के ७० पृष्ठ की पुस्तक का प्रचार बढ़ाने के लिये केवल एक आने में हम घर बैठे पहुँचा देने को तैयार हैं ।

जो सज्जन इसे धर्मार्थ बांटने के लिये थोक संग्रह करेंगे उन्हें और भी किरायत की जायगी ।

॥ श्री जी ॥

* अथ श्री सूर श्याम नाटक *



नेपथ्य में

(राग विहागरी) धन्य सूर भक्तन के राई । तिहारी
महिमा अपार बरनी न जाई ॥ १ ॥ हों तो बुद्धिहीन
तुम हो सरसाई । दास रसिक बन्दन करत चरनन
सीस नाई ॥ २ ॥

पुनश्चः

(राग विहागरी) आये मेरे बल्लभ नाम उपासी ।
माला तिलक गोपी जन मुद्रा कीटिक चन्द्र प्रकासी ॥१॥
भगवत कथा श्रवन पूट व्यापत पूरण प्रेम निवासी ।
दरशन भये लये सब ही सुख तत्क्षण आनंदरासी ॥२॥
पुष्टि की दान करत है नित विषयन रहत उदासी ॥
रसिक दास जन सो बड़भागी इनको संग सुखरासी ॥३॥
दोहा—भक्त बड़े भगवान ते यह कीनो निरधार ।

भक्तन हित निज धाम तज डोले नन्दकुमार ॥१॥

इति नान्दी मंगल पाठ ।

(यवनिका उत्थान सूत्रधार नटी दो चार पात्रियों
सहित गाते हुए दिखाई देते हैं)

सूत्रधार आदि—(राग विहागरी) आये मेरे श्री बल्लभ
के दास । ताकी समता नहीं त्रिभुवन में सुन्यो वेद

इतिहास ॥ १ ॥ वृज रसना के भाव न भावक सदा
 मन कृष्ण हुलास । मेघ गंभीर गरजत वधनामृत
 बरसत सुख की रास ॥ २ ॥ कोटि जन्म अघ हरत
 करत सुख भेटत सब विध पास । नाम लेत मन
 आनन्द उपजत भजनानंद विकास ॥ ३ ॥ इन को
 संग तनिक जो होई हरि बस होय अनयास ।
 वाग धीस पद कनल छाहि सिर निरभे करत वि-
 लास ॥ ४ ॥ ताकी नहिमा को कवि वरनत सकु-
 चत सरस्वती व्यास । तीरथन को अति तीर्थ
 कहियत पदरज गंध सुवास ॥ ५ ॥ लक्ष्मी करत
 अपेक्षा जिनकी निस दिन करत निवास । भक्ति
 मुक्त संग लगि डोलत करत अन्य उपहास ॥ ६ ॥
 कोटि समुद्र करुना नैनन में सब गुन तेज प्रकास ।
 रसिक दास जन को सब दीजे निज जन पदरज
 आस ॥ ७ ॥

सू०—धन्य ! प्रभो धन्य !! यह आप ही की अपार कृपा का
 प्रताप है, कि आज हमें यह परमानन्दमय अलौ-
 किक रहस्य देखने दिखाने का सौभाग्य मिला है,
 जो कि देश काल पात्र और वर्तमान समयानुसार
 लोगों को रुचिकारक होके सब का मनोरंजन
 करेगा और पूर्ण कलायुक्त चन्द्रमा की रंगीली
 अमृतमय चान्दनी की नाई लोगों के हृदय में
 सदबोध को प्रकाशित कर दुस्संगरूपी अन्धकार
 नाश करने में भी त्रुटि नहीं करेगा ।

नटी—प्राणनाथ ! यह सब तो होगा किन्तु आप रहस्य लीला दिखा आज कल के नई रोशनी वालों पर प्रभु भक्ति का महत्त्व प्रकाश कर सकें ऐसा तो कदापि ही नहीं सक्ता । रवि रजनी एक साथ उदय होते कहीं सुने देखे नहीं गये ।

सू०—प्रिय यह उन लोगों का अभाग्य ही न समझना होगा कि जो भगवत रस रूपी अमृत को छोड़ विषय रस रूपी हलाहल विष को पान कर के अपने मद में ऐसे अन्धे बन रहे हैं कि ऐसे अपूर्व मनोहर चरित्रों को देख भाल कर भी उन्हें सुबुद्धि नहीं आती किन्तु हम अपने कर्तव्य पालन में क्यों त्रुटि करें ?

नटी—निश्चन्देह प्राणनाथ जब से आप ने प्रेमान्ध नायक नायिकाओं के श्रृङ्गाररस प्रधान अभिनयों को छोड़ कर लोगों की रजो गुणी वृत्ति के अनुसार प्रभु भक्ति के रस में मिला के श्रृंगार हास्य करुणा आदि रसों का मूर्त्तिमान दृश्य दिखाने का लगा लगाया है तब से आप का कर्तव्य पालन भली भाँति से हो रहा है, तो भी नवशिक्षित शून्यहृदय युवाओं की नुकताचीनियों से मन में वेदना हुए बिना नहीं रहती ।

सू०—प्रिये ! जब वे आज के हमारे अपूर्व अभिनय के नायक विल्व संगल जैसे कामान्ध को भगवद्भक्तों में शिरोमणि होते देखेंगे तो अपनी कुबुद्धि के

लिये अवश्य पश्चात्ताप करेंगे । क्या सत्संग की सहिमा तुम्हें विदित नहीं है जो ऐसी चिन्ता करती हो ।

नटी—सत्संग की सहिमा मुझे विदित है । यदि यह सब सत्संगी होते तो आपका मनोरथ सिद्ध होने में सन्देह नहीं था, मुझे विशेष तो इस बात की चिन्ता है कि आज के नाट्य अनिनय के प्रारम्भ ही में श्रीगोलोक धाम का दृश्य है जहां बड़े २ योगीश्वर मुनीश्वर और ब्रह्मादि देवताओं की गम नहीं है वहां की लीला परोक्षक लोग अपनी चर्म चक्षुओं से कैसे निहार सकेंगे ?

सू०—प्रिये ! भगवद्भक्तों के चरित्रों को देखने सुनने की अभिलाषा करके जो लोग निज गृह कृत्य छोड़ यहां पधारे हैं वे सब सत्संगी होवें होंगे, सिवाय सत्संगियों के यहां कोई आ ही नहीं सक्ता । दूसरे इन्हें यहां आने का क्या कुछ फल नहीं मिलेगा ? अवश्य मिलेगा । तुम चिन्ता छोड़ परम भगवत् सूरश्याम का स्मरण करो । यह एक नाम ही ऐसा है । इस नाम की सहिमा के प्रताप से जो फल अपरयुगों में लाखों करोड़ों वर्ष कठिन तपस्या करने से प्राप्त होता था जो फल शीतकाल में जल में निमग्न रह कर ऊष्णकाल में पंचाग्नि तपने से प्राप्त होता था जिस फल के लिये घर बार कुटुम्ब कबीला छोड़ वैराग्य धारण करने की आव-

श्रयकता होती थी जिस फल के हेतु बड़े २ यज्ञ दान होस जपादि करने पड़ते थे वही फल आज शुद्ध अन्तःकरण से एक दफा श्रीसूरश्याम का नामोच्चारण करने से मिलता है तब तुम्हारी चिन्ता वृथा नहीं तो और क्या है ? जिस क्षण से इन सज्जनों को श्री शूरश्याम अभिनय देखने की रुचि प्रगट हुई है उसी क्षण से ये सब परम पवित्र होके श्रीगोलोक धाम की भांकी करने के अधिकारी हो चुके हैं ।

नटी—ओ हो नामोच्चारण की महिला तो मैंने आज ही सुनी ।

सू०—हां तो शीघ्रता से समय अनुसार एक मनोहर भगवत नामोच्चारण युक्त संगलाचरण अपने कोकिल कंठ से गा के सुना दो तो अभिनय प्रारम्भ हो ।

नटी—जो आज्ञा प्राणनाथ सुनाती हूं सुनिये ।

॥ सवैया ॥

शूकर हूँ कब रास रच्यो अरु बामन हूँ कब गोपी नचाई ।
मीन हूँ कौन के घोर हरे कछुआ हूँ के कब बिन बजाई ।
होय नृसिंह कहो हरि जू तुम कौन की छातिन रेख लगाई ।
वृषभानुसुता प्रगटी जब ते तब ते तुम केलिकला निधि पाई ॥

॥ राग सारंग ॥

जाको मन लागो गोपाल सों ताहि और नहि भावै ।
ले कर मीन दूध में राख्यो जल बिन सचु

नहिं पावै ॥ जैसे शूरमा घायल घूमत पीर न काहु
जनावै । ज्यों गूंगी गुड़ खाय रहत है स्वाद न काहु
बतावै ॥ जैसे सरिता मिली सिंधु में उलट प्रवाह
न आवै । तैसे सूर कमल मुख निरखत चित इत उत
न लावै ॥

(सब जाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

प्रथम अंक ।

द्वितीय दृश्य ।

(स्थान-श्री गोलोक धाम जहां कोटि कोटि चन्द्रमा का
प्रकाश हो रहा है, नाना प्रकार के सुरीले वाजे बज
रहे हैं, परम सुहावनी नवपल्लवों से भूमि हरित हो
रही है, चौतरफा गायों के झुंड के झुंड वीणा-नाद
सुन के सुग्धावस्था में विद्यमान हैं । एक ओर
धातु रत्न मय श्री गिरिराज महाराज विराजमान हैं,
दूसरी ओर श्री यमुनाजी लहरें ले रहीं हैं जिन के
देदीप्यमान रत्नजटित तटों की शोभा अतीव मनोहर
है । मध्य में श्यामसुन्दर अनेक गोपियों के मंडल में
श्री स्वामिनी के गले में भुजा डाले नृत्य कर रहे
हैं । महा अलौकिक आनन्द वर्त रहा है । एक तरफ
ब्रह्मादि देवता खड़े स्तुति कर रहे हैं ।)

ब्रह्मादि देवता—

॥ छन्द ॥

अनुसार अस्तुति युगल प्रेमानन्द मन सन्मुख खरे ।
 जै जै मगत हित सगुण सुन्दर देह धर धावत हरे ॥
 जो रूप निगम नेति गायो बुद्धि मन वाणी परे ।
 सो धन्य गोकुल आय प्रगटे धन्य यशुमति तर धरे ॥
 पारब्रह्म परमेश्वर अविगत भुवन चतुरदिशनाथ
 हरी । जब र भीर परी सन्तन पै प्रकट होय
 प्रतिपाल करी ॥ आदि अन्त सब के तुम स्वामी
 ब्रह्मादिक हैं अनुगामी । कृष्णा नमामि नमामि
 नमामी दयासिंधु अंतर्यामी ॥ जाको ध्यान धरत
 योगी जन शेष जपत नित नाम नये । सो भवतारण
 दुष्टनिवारण संतन कारण प्रगट भये ॥ जै दुख
 मोचन पंकज लोचन उपमा जाय न कहत बनी ।
 जै सुख सागर सब गुण आगर शोभा अङ्ग अनङ्ग
 घनी ॥ जिन की पदरज की सुर तरसें अगम अगो-
 चर दनुजारी । आहि त्राहि प्रण तारन भंजन जन
 मन रंजन सुखकारी ॥ तुमारी माया जीव भुलानो
 किहि बिधि नाथ तुम्है जाने ! तुम ही कृपा करो
 जब स्वामी तब हीं तुम को पहुँचाने ॥ हे मुकुंद
 मधुसूदन श्रीपति कृपानिवास कृपा कीजै । इन
 चरणन में सदा रहै मन यह वरदान हमें दीजै ॥

प्रयाससुन्दर—(स्वयं) समय के प्रभाव से देवी और आसुरी
 सृष्टि परस्पर में मिल जुल के एक हो गई हैं ।
 यदि इन्हें भिन्न र करने का उपाय नहीं किया

जायगा तो सविष्य में बड़ी कठिनाई उपस्थित होगी
 सो इन्हें अवश्य भिन्न २ करना उचित है ।

नारद (गाते २ आ कर) राग कान्हरी

बंदों में चरण सरोज तिहारे । सुंदर श्याम कमल
 दल लोचन ललित त्रिभंग प्राणपति प्यारे । जे पद
 पद्म सदा शिव की घन सिन्धुधुता सर से नहि
 टारे । जे पद पद्म तात रिस त्रासत मन वच क्रम
 प्रह्लाद सम्हारे ॥ जे पद पद्म फिरत वृन्दावन अहि
 शिर धरि अगणित रिपु सारे । जे पद पद्म परस
 ब्रज युवती सर्वस दे सुत सदन विसारे ॥ जे पद पद्म
 लोक त्रय पावन सुरसरि दरश कटत अघ भारे ।
 जे पद पद्म परिस ऋषिपत्नी नृप अस व्याध
 अमित खल तारे ॥ जे पद पद्म फिरत पारुष्य गृह
 दूत भये सब काज संवारे । ते पद पंकज सूरदास
 प्रभु त्रिविध ताप दुख हरण हमारे ॥

(गायन के अन्त में समीप जा साष्टाङ्ग दण्डवत्
 करते हैं ।)

श्याम सु०—(देख के) कौन महा मुनि ? नारद जी । आओ
 भले पधारे, कहो मृत्यु लोक की अब के क्या खबर
 लाये हो ?

नारद—(पुनः सा० दण्डवत् कर) जै जै जै प्रणतिपाल
 प्रभो वर्त्तमान में मृत्यु लोक पर कलियुग ने जोर
 से अपना पैर जमा लिया है सो लोगों की बुद्धि में
 स्वार्थ लोभ और ईर्ष्या ने घर कर लिया है ।

श्याम०—हम और २ लोगों की स्थिति नहीं पृच्छते ।

केवल अपने निज भक्तों का वृत्तान्त सुना चाहते हैं।

नारद—ऐसे मेरे अहोभाग्य कहां कि आप के निज भक्तों के मुझे दर्शन हों । हां तो कृपा करके आज भक्तों की सुधि करने का क्या कारण है सो तो कह सुनाइये ।

श्याम०—क्या तुमने नहीं सुना मेरा नाम भक्तवत्सल है । मुझे अपने भक्तों की याद अहर्निश बनी रहती है । मैं भक्तों के आधीन हूं मुझे मेरे भक्त चाहें जहां बेच सक्ते हैं । भक्त मेरे सर्वस्व हैं । भक्त मेरे और मैं भक्तों का हूं ।

नारद—धन्य प्रभो ! आप के अनन्य भक्तों के दर्शन की मुझे परम उत्कंठा है कृपा करके आज्ञा करिये कि इस वर्त्तमान समय में आप का ऐसा भक्त कौन और कहां रहता है ?

श्याम०—इस समय तो मुझे अपने अनन्य भक्त विल्व-संगल और उसकी प्रेमिका चिन्तामणि की सुधि आरही है । हा ! माया ने उन्हें कैसा विषय लरूपट बना रखा है किन्तु मैं अपने निज सखाओं के वियोग की ज्यादा सहार नहीं सक्ता ।

नारद०—तो उनके उद्धार का कोई उपाय करिये ।

अच्छा प्रभो ! कृपा करके उस परम सौभाग्यवान् आपने कृपा-पात्र को मुझे दिखा तो दीजिये । मैं भी तो देखूं कि वह कैसे भक्त हैं ।

प्रयास०—अच्छा चलो मृत्यु लोक में तुम्हें दिखावें—
 (पलक सारने पर परदा उलटता है, सीन उलट
 के एक सुसज्जित विशाल भुवन बन जाता है ।)

प्रथम अंक—तृतीय दृश्य ।

[विल्व मंगल तथा सेठ विलासीराम मित्रों सहित
 मनोहर बख्खालद्वार से सुसज्जित पुत्र जन्म की खुशी
 में परम सुन्दरी चिन्तामणि का नृत्य देख २ कर
 आनन्दमग्न हो रहे हैं]

चिन्ता०—

राग—

चलूं रुनक झुनक मदभरी रसीली बाल नवेली
 नार—अधरन लाली का सिंगार छोटी छतियन की
 बहार—सीहे गालों की लाली गुलाबी मेरी लघु
 वयस मतवाली—कली कली खिल रही सीस जुलफें
 काली तिरछे नैनों के नखरे वाली—रंगली रसीली
 छत्रीली नाजनियां प्यारी गुलजार ।

(बीच २ में विल्व मंगल और सेठ विलासीराम जी
 आदि वाह वाह—क्या कहना है कहते लोट पोट हो
 के गाती हुई चिन्तामणि पर मोहित हो रहे हैं ।)

वि०मं०—वाह वाह क्या कहना है वस तुम्ही तुम हो ।

शनि शोभा दे रह्यो मस्तक में जाके अधरन की
 लाली में मंगल विद्यमान है । रवि सो प्रकाश
 विद्यमान है जाकी बदन कान्ती में तापी भयो

अन्धकार को विनाश है ॥ शुक्र के समान शोभा
लखि नाभी कमल की बुध हू की गई बुध फेहरान
है । वृहस्पति देख के ऐसी विकास मारयो २ फिरे
चन्द्रवदनी को भयो जब प्रकाश है ॥ १ ॥

ससम्प्री प्रिये ! यदि तुम प्रसन्न हो तो नक्षत्र प्रसन्न ।
वाह ! वाह !! प्यारी चिन्तामणि क्या कहना है !
प्यारी तेरे रूप की शोभा कही न जाय जैसे पून्यो
शरद की प्रगटो चन्दा आय ॥१॥ मृगनयनी गज-
गामिनी सो मन रही लुभाय शोभा लखि या देह
की कामदेव डिग जाय ॥ २ ॥

चिन्ता०—ओ हो ! आप तो परम रसिक जान पड़ते हैं ।

वि०—प्यारी सूरत तेरी सोहनी मृग खंजन से नैन । कटि
केहर बांकी बनी बोलत अमृत बैन ॥

वाह धन्य ! चिन्तामणि तुम्हें देख जी चाहता है
कि तुम्हें पर अपने प्राण न्यौछावर कर दूं । आह !
संसार में जन्म लेकर जिसने चन्द्रवदनी मृगलो-
चनी सुन्दरियों को कंठ नहीं लगाया, संसार में
जन्म लेकर जिसने कोमलांगियों के चंदनचर्चित
देह से आलिंगन नहीं किया, संसार में जन्म धार
कर जिसने पैने ऊपर को उठने वाले कुचयुगों का
सर्दन नहीं किया, संसार में जन्म धारण कर जिसने
रंगीली रसीली कटीली तिरछी भोंहवाली सुन्दरी
की चितवन का रसास्वादन नहीं किया, संसार में
जन्म लेकर जिसने चिन्तामणि तेरे समान रूपवती

रत्नशियों से रत्न नहीं किया उसका जन्म लेना
वृथा है ?

(श्याम सुन्दर नारद सहित अन्तरिक्ष में आके)
श्याम सु०—क्या देखा नारदजी यह हमारा पूर्व का
सखा विल्व संगल है ।

नारद०—देखा कृपानाथ ! किन्तु ऐसे विषयान्ध के हृदय
में भक्ति का प्रभाव होना कैसे सम्भव होगा ?

श्याम सु०—आसुरी सृष्टि से दैवी सृष्टि को विलग करने
के लिये मुझे स्वयं अवतार लेना पड़ेगा ।

नारद०—हां तब तो आपकी अपार कृपा के प्रताप से
जीवों का परम कल्याण होना सम्भव होसکتा है ।
जरा देखिये तो सही कि आप का सखा इस समय
चिन्तामणि पर कैसा मोहित होरहा है ।

श्याम०—क्या तुम अपञ्चीती भूल गये, एक दिन तुम
भी तो ऐसे मोहित हो के मुझ से सौन्दर्य
सांगने आये थे ।

नारद०—नहीं मैं नहीं भूला आप की विश्वमोहिनी
माया ही ऐसी है । भले २ भूले फिरते हैं तो जीव
की क्या सामर्थ्य है जिस पर आप कृपा करें वोही
आप की माया से निस्तार पावे तो पा सके ।

श्याम—(मुसकरा के) अच्छा तुम जरा जाके इन को
चपदेश तो कर देखो ।

नारद०—जो आज्ञा (श्यामसुन्दर अन्तर्द्वान हो जाते
हैं, नारद जी पास जाते हैं ।)

वि० सं० (नारद जी को आते देख) अरे यह पीड़ा
कहां से आई ? अबे ओ जोगटे यहां क्यों आरहा
है यहां तेरा क्या काम है ? चल हट परे वहीं से
दूर हो ।

नारद०—तुम्हें ज्ञानोपदेश करने आते हैं ।

वि० सं०—मुझे ज्ञानोपदेश तुम क्या करोगे ? तुम अपना
ज्ञानोपदेश, भक्ति, वैराग्य सब को हमारी उपास्य
चिन्तामणि पर गयीछावर कर डालो तो थोड़ा है,
समझे—चिन्तामणि २ बस तू ही तू तो है ।

नारद०—अरे विषयान्ध ले सुन ।

कुबडलिया ।

या बन में कई केहरी कूप गंभीर अपार ।
द्वै पहार के बीच में बसत एक बटमार ॥
बसत एक बटमार उभै धनु शर संधाने ।
ता पीछे एक स्याह नाग नीचा तहखाने ॥
बरने दीनदयाल इन्हें लखि डरिये मन में ।
पथिक सुपन्थ बिहाय भूलिये नहि या बन में ॥

कवित्त ।

भेटत ही मांगे भेट पीछे ते गहति फेंट लेट २ जात
अंग हाथन बगादे है । बसन आनदे कहै भूखन
बना दे चारु चुनरी रंगा दे धीर धर्म भगा दे है ॥
पुरे मतिमन्द परे मत गनिका के फन्द ऐसी
व्यभिचारनि ये अन्त में दगा दे है । काम को

जगा दे व्याधि सगरी लगा दे प्रभू को मुलवा दे
करे रति में तगादे है ॥ समझे ?

वि० सं०—चल हट समझाने वाले—इस रस को तू जोगड़ा
क्या जाने ?

नहिं तीरथ वर्त्त किये तो कहा तिरिया गन में
किये गस्त तो हैं । नहिं शंभू ही पूज सके तो कहा
वनिता कुच पै घरे हस्त तो हैं ॥ नहिं दान दिये
द्विज को तो कहा कर छूट में कीने प्रहस्त तो हैं ।
जस अस्त ससस्त भयो तो कहा गनिका के स्वरूप
में सस्त तो हैं ।

नारद०—(जन में) यदि इसे ब्रह्मा भी आन कर उपदेश
दें तो भी यह न माने मेरी क्या शक्ति है ।

(प्रगट) अच्छा तो तुम नहीं सुनते ? (जाता है)

वि० सं०—नहीं बस जाओ यहां से सीधे चले जाओ ।

(चिन्ता० से) हां चिन्तामणि हो तुम्हारा मधुर
गान व नृत्य (स्वयं) बीच में यह रानी सूरत
वाला कहाँ से रंग में भंग करने चला आया ?

चिन्तामणि—नृत्य गान

मैं तो बाज आई दिल को लगाने से
छेला संग लियो मोहे बहाने से
रैन सारी मोहे चैन न आवे
पिया संग जागी जगाने से
बाली उमर मदन मदमाती
लूटा जोवन रस गुल जाने से

हाथ पकड़ मेरा पुहंवा पकड़ा
 छोड़ी पिया मैं हारी मुसकाने से
 पतली कमर में बल जो पड़त है
 देखेंगे लोग क्या होगा उन्हें हंसाने से
 मैं क्या जानती थी कि देख लेना भी इसीनों का
 बला होता है । सीठा र सा यहां दरद जरा
 होता है ॥ जब तनाही में होती हूं तो सिवा
 होता है । किस से पूछू कि मुझे यह क्या होता है ॥
 वि०म० आदि—(मोहित हो कर) वाह ! चिन्तामणि
 वाह!! बस तू ही तू तो है ॥

यवनिका पतन

प्रथम अंक ४ दृश्य

स्थान—वि० मं० का घर ।

प्रभावती (स्वयं) संपति सुमति नीकी विपति सुधीर
 नीकी गंगा तीर मुक्ति नीकी नीकी टेक नाम की ।
 पतिव्रता नारी नीकी पर-उपकार नीकी चान्दनी
 सुरात नीकी जीति नीकी काम की ॥ बालकृष्ण वेद हूं
 खानी नीकी भूसुर की भक्ति नीकी उत्तम चहनि
 नीकी हरि धाम की । तात हूं की मिलन नीकी
 सुर मिल तान नीकी पतिव्रत हूं की टेक नीकी प्रीति
 नीकी एक श्री राम की ॥

हा ! कितनी रात गई है अब तक प्राणेश क्यों
 नहीं लौटे उनके वियोग में एक र क्षण करप के

समान व्यतीत हो रहा है । न जाने आज वे अब तक कहां हैं ?

गाती है राग काफी

वे दरदी तोहि दरद न आवै ।

चितवन में चित बस कर मेरो अब काहेको आंख
चुरावै ॥ कब सों परी तेरे द्वारे पै बिन देखे जियरा
घबरावै । नारायण महबूब पियारे घायल कर फिर
राह बतावै ॥

वि० सं० (आकर) हा ! चिन्तामणि बस तू ही तू तो
है ! (प्रभावती को देख कर) कौन ? प्रभावती ! क्या
अब तक तुम जाग रही हो ?

प्रभावती—नाथ ! आप के वियोग में मुझे निद्रा कैसे
आती ?

वि० सं०—अच्छा एक काम करो तिगोरियों की कुजियें
मुझे दो ॥

प्रभा०—मध्य रात्रि के समय कुजियां ले कर क्या कीजि-
येगा ?

वि० सं०—उस में से रत्नजटित बहुमूल्य आभूषण निका-
लूंगा ।

प्रभा०—वे सब तो आज मैं ने पहन रखे हैं ।

वि० सं०—तो ला कटपट उतार के मुझे दे

प्रभा०—मध्य रात्रि में इन्हें लेकर क्या करोगे ? इस समय
चलिये शयन-भवन में चल कर विश्राम कीजिये ।
मैं आप के चरण चाप अन सैदूंगी ।

वि० सं०—चल हट अस बैठने वाली ! झटपट उतार गइने,
देर मत कर, विलम्ब होती है । (मन में) हा
चिन्तामणि २ तू ही तू है । जहां देखो वहां तेरा
विकाश है, तुझ बिना सब वृथा प्रकाश है ॥

प्रभा०—प्राणनाथ ! दासी की बिनती मानो आज यहीं
निवास कर मुझे सुख दो ।

वि० सं०—अब रहने दे अपनी चापलूधी गइने उतारती
है कि नहीं ?

प्रभा०—मैं समझी पियाजी की आप किसी परनारी के
मोह में पड़े जान पड़ते हो किन्तु स्मरण रहे पर-
नारी पर मोह करने वालों का अन्त में विनाश
ही होता है । रावण के कुल वैभव का जिस से
नाश हुआ, बालि जैसे योद्धा को जिस परनारी के
संग से मरना पड़ा, जिस परनारी के संग से इन्द्र
के सहस्र भग अंग हुए, परनारी के संग से चन्द्रमा
को कलंकित होना पड़ा । कीचक को परनारी पर
लक्ष्य देने से सपरिवार नष्ट होना पड़ा—और तो
क्या परनारी वृन्दा पर ध्यान देने से विष्णु भग-
वान् तक को पत्थर होना पड़ा । सो हे प्राणेश !
इतने बड़े २ उदाहरणों के रहते भी आप परनारी
पर ध्यान धरें तो उस का परिणाम कैसा भयंकर
होगा ?

वि० सं०—मैं यह सब तुम्हारी उपदेश भरी बातें सुनने
नहीं आया । ला झट आभूषण उतार दे ।

प्रभा०—समझो प्राणनाथ समझो मैं एक दफा पुनः कहती हूँ कि कहीं बगुला श्वेत होने से हंस नहीं बन जाता। गधैया को उत्तम शृङ्गार से सजाने से उसे कोई गी नहीं कहेगा।

सही दूध सम गिनै हंस वक्र भेद न जाने।

कोकिल कागन ज्ञान कांचसनि एक प्रमाने ॥

चन्दन ढाक समान रांगा रूपौ सम तोलै।

बिन विवेक गुन दोष मूढ़ कवि सम कर बोलै ॥

वि० सं०—मैं सब समझता हूँ तू अपने आप को बड़ी पतिव्रता प्रकट करे थी, आज देख लिया तेरा पतिव्रत। मेरी आज्ञा चलन करने ही मैं तेरा पतिव्रत है ना ?

प्रभा०—यदि आप मेरे पतिव्रत धर्म की जांच करते हैं (आभूषण उतार के दे के) तो यह लीजिये। मैं अपने पतिव्रत धर्म के सन्मुख इन कंकर पत्थर के तुल्य आभूषणों को तुच्छ समझ आप की आज्ञानुसार आप को उतार के देती हूँ।

वि० सं०—(लेकर सहर्ष) अब बन गया कान अब अपनी प्रेमदा के पास ले जाऊँ, उस को पहनाने से परमानन्द होगा। चिन्तामणि ! अब तू ही तू तो है।
(जाता है)

प्रभा०—[गाती है] गजल ।

बिया बिस्मल मुझे उस की अदा के हाथ क्या आया।

तड़फता छोड़ कर तेरे कृपा के हाथ क्या आया ॥

दिखा कर टुक जमाल अपना मुझे तो कर दिया गैदा ।
 भला पूछे कोई उस माहूर के हाथ क्या आया ॥
 मेरे इस गुंथये दिल को कभी उस ने न आ खोला ।
 गया वसलए वक्त उस शव के हाथ क्या आया ॥
 लगाना खूब दिल चाहा था मैं ने उस के पांवों से ।
 भला इस पेशकदमी से हिता के हाथ क्या आया ॥
 फिरा सहरां बियाबां तालवे दीदार नारायण ।
 बिठाया उस को परदे में हया के हाथ क्या आया ॥

[जाती है]

यवनिका उत्थान ।

प्रथम अंक ५ दृश्य ।

स्थान चिन्तामणि का घर ।

चिन्ता०—(स्वयं) आज विश्व संगल अब तक क्यों नह
 आया ? उस भोगी अमर के बिना मैं कैसी तरल
 रही हूं । हा प्यारे ! आज बसन्त ऋतु की चम्पा
 चमेली तुम्हारे बियोग में कैसी तपा रही हैं ।

वि० सं०—(आ कर स्वयं) चिन्तामणि तू ही तू है । धन्य
 तेरे प्रेम की बलिहारी है । जैसे लोहे को चुम्बक
 चकोर को चन्द्र मेघ को चातक पतङ्ग को दीपक
 सर्प को मुरली हिरन को जलतरङ्ग पर आसक्ति
 है वैसे ही चिन्तामणि तेरे प्रेमी को तेरे में परमा-
 नुरक्ति है । (देख कर) हैं यह तो यहीं मेरी याद
 में खड़ी है । (पास जा) चिन्तामणि २ धन्य तेरा

प्रेम और धन्य तू ! अहा ! रसमयी रसिका मद-
मयी मतवाली प्राणप्रिया धन्य २ तू । सरबसी
प्रेमदा चन्द्रबदनी मुझे अपने हृदय में स्थान दे ।

चिन्ता०—(चोंक कर) कौन ? आये मेरे जीवन धन प्राण
(कंठ लगा कर) मैं तो आप ही की याद कर
रही थी ।

वि० सं०—क्यों नहीं तुम्हारे जैसी रसीली लक्ष्मीलियों के
प्रेम की गांठ कड़ी न हो तो और किस की हो ?
मैं आज तुम्हारे यौवन बाग की बहार निरखने
आया हूँ । हीरा मोती मणि नाशिक्य के आभूषण
बहुत लाया हूँ सो क्या अपनी प्रेमपाठशाला में
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ा कर कृतार्थ न करोगी क्या ?

चिन्ता०—(आभूषण ले कर) क्या तुम्हारे अपनी स्त्री
नहीं है जो यह सब मुझे देते हो ?

वि० सं०—स्त्री क्यों नहीं है ? यह सब तो तुम्हारे ऊपर
निछावर हैं निछावर (लोट पोट होता है)

चिन्ता०—जब वह ठंडी सांस भर कर निसासा डालेगी
तब क्या होगा ?

वि० सं०—निसासा डालेगी अपने फूटे भाग्य पर और
निसासा डालेगी भगवान् पर यहां तो मैं तुम्हारे
यौवन का रसमोगी संवरा बन के ऐसा लटू बन
गया हूँ कि चिन्तामणि तू ही तू है । तेरे बिना
सारा जगत् तुच्छ है तुच्छ ।

चिन्ता०—(चटक मटक कर) मेरा सब तन मन आप पर
अर्पण है ।

वि० सं०—देख प्रिये ! जाति का ब्राह्मण होने से एक
तो मैं उत्तम हूँ, दूसरे कामदेव का पुजारी हूँ ।

चिन्ता०—हां ! तो तुम्हारा इष्ट कौन है ?

वि० सं०—मेरा इष्ट चिन्तामणि है !

रेशमी साड़ी वाली चुरत कंचुकी कसन वाली मणि
मुक्ता सीस की जौन है । बंक मुसक्यान वाली
तिरछी चितवन वाली मेरे चित्त की बसी करन
भौन है । चन्द्र बदन वाली कमल से नयन वाली
वा भिन्न और दूसरी त्रिभुवन में कौन है । कहे
कवि दासानुदास रंग में रसीली छबि में छबीली
चिन्तामणि इष्ट हनारो और कौन है ॥

चिन्ता०—तुम तो खासे कवि हो ।

वि० सं०—अभी क्या और सुनो जी चाहता है कि अह-
निशि तुम्हारे गुणों का गान किया करूँ ।

रस-सिन्धु सी रसीली रंगीली छबीली अपने जने
काज मानो दूजो कुरुक्षेत्र है ।

पेट पुष्कर से चरु यादवस्थली सी जाकी वेणी
में त्रिवेणी शोभा देत है ॥

गंगा सी तरंग चठे हास्य औ विनोद में

काशी औ कैलाश मानो जंचे कुच प्रदेश हैं ।

चितवन में चिन्ता हरण नाभि तले अमृत कुंड
सप्त पुरी चारो धाम मय चिन्तामणी क्षेत्र है ॥

चिन्ता०—मत ललचाओ खेल जी रती भोग रीझवार ।

सेज बिछाई प्रेम सूं जोवन की भरमार ॥

वि० सं०—तू है सुन्दर कामिनी मैं तोहे चाहन द्वार ।

फूलों केरी सेज में छिड़को अतर अपार ॥

चिन्ता०—मैं हूं दासी आप की मत ना जानो और ।

सेजा लिपटूं आप को ज्यों चकरी की डोर ॥

वि० सं०—लिपटूं र कर रही आओ मेरे पास ।

रङ्ग ढीलया के ऊपरे पुरे तुम्हारी आस ॥

चिन्ता०—तुम हो तरकस तीर ज्यों मैं हूं नालक बाण ।

तिहारी हूं जी बालमा जी चाहें ज्यों नाण ॥

वि० सं०—चाह क्या कहना है चिन्तामणि तू ही तो है ।

तेरी बराबरी कौन कर सका है ।

शिव दीनी भुजंग देणी ब्रह्मा दीनी सराल गती

विष्णु चक्र दियो नाक में धारण कूं ॥

हास्य में हरी मुसक्यान में माधव से नेत्रों में

नारायण के दर्शन होत निज जनन कूं ॥

एरावत गति भूल्यो चन्द्रमा गरूर भूल्यो शोभा

निरख सुकुमारता कूं ॥

कहे कवि दासानुदास सुन्हो हो विधाता तेने

निश्चिन्ताई में बनवाई है चिन्तामणी नार कूं ॥

चिन्तामणि—(गाती है वि० सं० उस पर लट्टू होके

खूब लोट पोटा होता है)

सैयां मैहूं गुलाबी रंग प्रियतम रंग केशरिया ।

मेरा जोवन गुलाबी फूल प्रियतम रंग केशरिया ॥

घुन २ कलियां सेज बिछाईं सोवे गुलाबी फूल
सड़ावे रंग केसरिया ॥

चि० सं०—ओ हो ! (लपट भपट प्रेम मदमाते होके घूमते हैं)
ययनिका पतन ।

१ अंक ६ दृश्य ।

(स्थान राजमहल बाहरी प्रान्त)

मन्दनति प्रधान निज भृत्य सहित आता है ।

संद०—क्यों भीमा ! मैं कैसा चस्ताद हूं देखो शनैः २ अपनी
चतुराई से कैसी पदोजति कर ली । यदि मैं इतना
घुट्टिमान् न होता तो खवासन के पेट से जन्म
लेकर प्रधान सन्त्री क्यों कर बनता ? लोग मुझे
मन्दनति कहा करते हैं सो आज से मैं अपना
नाम श्रीमान् तीक्ष्णबुद्धि दीवान जी० सी० ए०
आई० ई० ई० ई० आदि आदि रखे लेता हूं ।
खबरदार कहीं आज पीछे मुझे मन्दनति न कहना ।
हां कहो तो मैं कौन हूं ?

भीमा—(मन में) अब मैं क्या कहूं । यह कैसा सवाल
है ? मैं क्या समझूं कि यह कौन है (मगट) आप
मेरे अन्नदाता हैं अन्न—

सन्त्री—मैं यह नहीं पूछता अपना नाम पूछता हूं ।

भृत्य—सो तो अभी आपही ने बताया है ।

सन्त्री—हां सो तुम्हें कुछ याद है ?

भृत्य—और तो कुछ याद नहीं केवल इतना याद है कि
 सो० एस० ई० आई० आदि ।

मन्त्री—अरे यह तो आधा नाम हुआ आधा (सोच कर)
 जान पड़ता है कि ऐसे मेरे इतने बड़े नाम को
 याद करने में लोगों को बड़ी कठिनाई होगी सो
 विज्ञापन क्लर्क, समाचार पत्रों में अपनी बड़ा-
 दूरी के लेख दूं, बड़े २ अक्षरों में लिखा के हैंडबिल
 दीवारों पर लगवाऊं, जैसे ही अपने नाम को
 सुधारूँ जरूर सुधारूँ । (सामने देख कर) हैं महा-
 राज इधर को आ रहे हैं । अच्छा मैं सम्मल जाऊँ
 (नौकर से संकेत कर के उसे सावधान रहने को
 कहता है । स्वयं अपनी पोशाक आदि ठीक करता है)
 (चन्द्रसिंह राजा अपने दूतरे सुमतिचन्द्र नामक
 दीवान सहित आता है ।)

चन्द्र०—(आते २) हां । ऐसे महात्मा है ?

सुमति०—जी हां बड़े योग्य हैं । उन के समान धरती पर
 थोड़े महात्मा होंगे । दैवयोग से उन का यहां
 आगमन हुआ है न जाने कौन जन्म के सुकर्मों
 का फल उदय हुआ जो ऐसे दर्शनीय महात्मा श्री
 सोमगिरि जी का यहां पधारना हुआ ऐसे आदर्श
 नररत्न की भेट अवश्य करनी उचित है ।

चन्द्र० (सन्देह से) क्यों तुम्हारी महात्मा सोमगिरिजी
 के विषय में क्या राय है ? वे यहां पर श्री विष्णु
 यज्ञ किया चाहते हैं । उस में हमें कहां तक सहा-
 यता देनी उचित है ?

मन्द०—यदि आप मुझ से पूछते हैं तो मैं राय देता हूँ कि एक कौड़ी की सहायता देना भी उचित नहीं है । ऐसे जोगटे हजारों मारे २ धक्के खाते फिरते हैं । इन्हें देने से क्या लाभ ? कुछ भी नहीं ।

सुमति०—क्यों लाभ नहीं ? श्रीमद्भगवद् गीता में कहा है कि “ यज्ञ कर्मसु भद्रमवा अन्नाद् भवति परजन्यो ” यज्ञ से सुवृष्टि होती है सुवृष्टि से धन धान्य की वृद्धि होती है जिस से प्रजा आनन्द में मग्न रह कर परम राजभक्त हो जाती है । ऐसे सुकृत में व्यय न करोगे तो यह साया किस काम आवेगी ?

चन्द्र०—मैं किस की मानूँ (दोनों से) तुम्हारा कहना भी ठीक है और यह सुमतिचन्द्र कहते हैं सो भी उचित है । मैं क्या करूँ और क्या न करूँ ?

मन्द०—और करना ही क्या है ? उसे धता बताओ यहां से धता—ऐसे व्यभिचारी पाखण्डियों की जहां मेरे जैसे श्रीमान् के शुभेच्छुक तीक्ष्णबुद्धि दीवान जी० सी० एस० आई० ई० आदि विद्यमान हों वहां दाल थोड़े ही गल सकती है । सुमतिचन्द्र में इतनी बुद्धि कहां जो असल काम असल को पहिँचान सकें ।

चन्द्र०—क्या तुम सब कहते हो कि वह व्यभिचारी हैं ?

मन्त्री—हां हां परले सिरे का भांड है, भिक्षुक है और ज्यादा कहां तक कहूं भडुआ है ।

चन्द्र०—अच्छा अब मुझे दोनों के कथन की परीक्षा स्वयं करनी पड़ेगी । देखो मेरी परीक्षा का परिणाम

जिस के विरुद्ध होवेगा उसे खूब दंडित करूंगा ।
(मन्द स्वर से) अच्छा तुम उनके व्यवहारी होने
का प्रमाण शीघ्र तैयार करो ।

मन्द०—जो आज्ञा ! उसे वेश्या के फन्दे में फँसा के मैं
शीघ्र आपके पास हाज़िर करूंगा ।

चन्द्र०—अच्छा चलो सुमतिचन्द्र जी इस समय देव दर्शन
कर आवें ।

सुमति०—चलिये पृथ्वीनाथ (दोनों जाते हैं)

मन्द०—(स्वयं) हाय ! अब के वेढब फँसा । इतने दिन
से तो अपनी पदोन्नति करने में पूरी २ बुद्धिमानी
की किन्तु आज महात्मा सोमगिरिजी के विषय में
सुमतिचन्द्र से विरुद्ध पड़ कर अपने सिर पूरी आफत
केलनी पड़ी । यदि अब का दाव सीधा न पड़ा तो
मेरा क्या हाल होगा ! अच्छा प्रयत्न तो करता
हूँ ॥ (भृत्य के प्रति) तो शीघ्र जाके चिन्तामणि
नायिका को फौरन बुला ला ।

भृत्य०—जो आज्ञा (जाता है जाते २ स्वयं)

कुण्डलीया ।

गन्धर्वनि कवि जन मिले कीये प्रेम भरपूर ।

ताते यह पैदा भये कृपण कृतघ्नी क्रूर ॥

कृपण कृतघ्नी क्रूर चूर नित रहें नशे में ।

चुगल चूतिया चुहलबाज नित धरें ध्यान में ॥

कहे गिरधर कविराय बड़े हैं दोगला दर्पण ।

रूप सहित गुणरहित मूढ़ यह जाने गंधर्वनि ॥१॥

जैसे आप लिपाड़िया तैसी ही परिवार ।
 हंस २ के बातें करें हियो न जाने सार ॥
 हीयो न जाने सार भांड महुअन के भाई ।
 बार बार कहे देत बड़प्पन मानो लुगाई ॥
 कहे गिरधर कविराय पचैया परधन ऐसे ।
 जरत जीव लखि हरियो हलाहल शंकर जैसे ।

मन्द०—(स्वयं) हा ! अब चिन्तामणि आवे तो काम
 चले, उसे भेज कर उस जोगटे की फँसाऊँ बस फिर
 क्या है पौबारा ही पौबारा है । कहीं महात्मा
 की कसोटी में मेरी चोटी न उड़ जाय ?

चिन्ता०—(आकर) कहिये मुझे क्या आज्ञा है आज
 कैसे याद की ?

मन्द०—आज तुझे एक परमावश्यक कार्य करने के लिये
 बुलाया है । यदि यह कार्य तूने कर दिया तो
 तुझे निहाल कर दूंगा (गले से हार उतार कर
 देता है) इस समय यह तो ले, बीणी तो कर ले
 देख कैसा उत्तम है ।

चिन्ता०—(हार लेकर) हार तो उत्तम है । मैं कुछ
 द्रव्य की भूखी थोड़ी ही हूँ, मैं तो केवल प्रेम
 अविचल प्रेम की भूखी हूँ ।

मन्द०—अच्छा अब एक काम कर, दरवाजे बाहर एक
 सोमगिरि नामक महात्मा टिके हैं जैसे बने
 तैसे उन्हें अपने फन्दे में फाँस के दिखा दे,
 बस यही काम है ।

चिन्ता०—बस इतने ही के लिये ! यह तो एक तुच्छ काम है । मैं चाहूँ तो बड़े २ योगीश्वरों मुनीश्वरों का ध्यान भंग कर डालूँ । इसे तो तुम कहो तो पिंजरे में बन्द करके ला दूँ ।

गायन ।

जाऊँ आज जाऊँ जोगी की डुलाऊँ ।

पियाऊँ रस प्रेम पियाला जोगी की ॥

नैनों से नचाऊँ अपने फंदे फँसाऊँ ।

जोगी की भोगी बनाऊँ खिलाऊँ ॥

जाऊँ जरूर लाल लहेरी बनाऊँ ।

सदभरी चाल जोगी ललचाऊँ ॥

मन्द०—बस २ मैं भी यह चाहता हूँ जब ऐसा करोगी तो मैं तुम्हें निहाल कर दूँगा ।

चिन्ता०—आप निश्चिन्त रहें जाती हूँ (जाती है)

मन्द०—फतह २ बस फतह (जाता है)

यवनिका उत्थान

प्रथम अंक ७ दृश्य ।

(स्थान महात्मा सोमगिरिजी का निवास स्थान सोमगिरिजी आसन सारे बीच में बैठे हैं चारों ओर चले बैठे हैं)

सोमगिरि—बेटा रगड़नाथ अब रात्रि विशेष गई जान पड़ती है सो तुम लोग जाके विश्राम करो मैं भी

एकान्त में उस चित्तचोर के ध्यान में समाधि
धारण करता हूँ ।

रगड़०—जो आत्मा गुरुजी (सब जाते हैं सोमगिरिजी
ध्यानावस्थित होते हैं) ।

चिन्ता०—(आकर स्वयं) अच्छे अवसर पर आई हूँ ।
ऐसे एकान्त समय में मेरे जैसी छैल छत्रीली से यह
क्यों न डिगेगा ? यह तो देखते ही लटू होजायगा
(पास जाकर प्रगट) जय हो गुरु जी महाराज
की जय ।

सोम०—(नेत्र मूंद) कौन है ? बच्चा इस समय
मध्य रात्रि को मेरे भजनानन्द में भंग करने का
क्या कारण ?

चिन्ता०—मैं एक दीन असहाय एक महान् दुखी स्त्री हूँ
आप की शरण में आई हूँ ।

सोम०—(ध्यानावस्थित) मध्य रात्रि उपरान्त स्त्री
होके अकेली यहां आई है कि और भी कोई तेरे
साथ है ?

चिन्ता०—मेरे कोई संगी साथी नहीं हैं मैं अकेली हूँ ।

सोम०—(नेत्रमूंद) इस प्रकार से स्त्रियों को अकेली बाहर
जाना उचित नहीं है तू परम दुखिया जान पड़ती
है इसलिये तुझे जो कह हो सो कह । मैं उसे
मिटाने तुझे अवश्य सुखी करूंगा ।

चिन्ता०—(मन में) फँसा लिया अब क्या है (प्रगट) महा-
त्माओं के कहे हुए वचन कभी मिथ्या नहीं जाते ।

आप ही के करने से मैं सुखी हो सकती हूँ । आप को विदित हो कि मैं कुमारिका हूँ । एक ज्ञानवान पति की खोज में मारी २ फिर रही हूँ (राजा चन्द्रसिंह सुमति चन्द्र प्रधान के साथ आकर खिप कर खड़े हो कर सुनते हैं)

सोम०—तुम ज्ञानी पति की खोज में हो सो मिलना असम्भव है । ज्ञानी होके वह गृहस्थ के जंजाल में क्यों पड़ेगा ? किसी योग्य गृहस्थ पति को ढूँढो । तेरी इच्छा पूर्ण होगी ।

चिन्ता०—मैं सम्पतिवान् को नहीं चाहती, मुझे तो वैरागी और त्यागी से विवाह करना है ।

सोम०—ऐसा तो मूर्ख कौन होगा कि जो वैरागी और त्यागी होके महा अनर्थ के मूलभूत विवाह के बंधन में फँसेगा ?

चिन्ता०—और नहीं तो आप ही सही, जब से आप के दर्शन हुए हैं तब से आप पर मुझे परम अनुराग उत्पन्न हुआ है ।

सोम०—(आंख खोल) माता जी यह क्या कहती हो ? मुझ जैसा संसारत्यागी पुरुष माया में कैसे फँस सकता है ? कहीं अन्यत्र जाके अपनी अभिलाषा पूर्ण करो । अरी ओ रक्त मांस की पुतली मैं तेरे कफ प्रलेप्ता मल मूत्र मय हाड़ चाम के शरीर को लेकर क्या करूँगा ? मुझे कांक्षा नहीं है अब यहां विशेष न ठहर, शीघ्र यहां से पलायन कर जा इसी में भलाई है ।

चिन्ता०—देखो घर बैठे गंगा आई है। वृथा मुंह न मोड़ो, ऐसा अवसर बार २ नहीं मिलेगा। कहा भी है कि विद्या वेणी और वनिता बड़े सौभाग्य से प्राप्त होती हैं। साधु तो वह होता है जो नपुंसक हो। संसार में जन्म लेकर जिसने मुझ जैसी सुन्दर रमणी से प्रेमालिङ्गन नहीं किया उसका जन्म लेना वृथा है।

सोम०—अस बन्द करो अपनी जवान में विशेष नहीं सुना चाहता। मिथ्या साया मोह में फँस कर हम अपने ज्ञान रूपी सूर्य के आगे तुम्हारे तुच्छ विषय रूपी चिराग को ले कर क्या करें? हमारी वृत्ति सस सत् चित् आनन्द स्वरूप श्री हरि में लग रही है।

चिन्ता०—(मन में) यह यों नहीं पिघलते, इन के यह बाहरी नखरे तभी तक हैं कि जब तक एक दफा मुझ से भेट नहीं होती। भेट होने के पश्चात् तो मैं इन्हें चंगलियों पर नचाऊंगी (प्रकट) किसी को गुड़ भला सालूस होता है और किसी को चीनी। यदि आप को संसार प्रिय नहीं है तो मुझे तो परम प्रिय है। आप को अपने प्रथम के वचनानुसार मुझे सुखी करने के लिये मुझे स्वीकार करके अपना वचन अवश्य निभाना पड़ेगा।

सोम०—(सरोच) क्या कहा? मुझे अपना वचन अवश्य निभाना होगा? मुझे यह विदित नहीं था कि

तू ऐसी भयंकर बात की इच्छा करेगी । हा ! तुझे अबला जान के श्राप नहीं देता । तेरा इस में क्या दोष ? मैं ने स्वयं मूर्खता की कि बिना विचारे वचन दे बैठा । अच्छा तुझे मेरे साथ पाणिग्रहण ही न करना है (दक्षिण हस्त बढ़ा के) यह ले इस हाथ से तुझे स्वीकार करता हूं । (वामहस्त से कटार ले कर सरोप) और दूसरे हाथ से तेरे स्पर्श हुए अपवित्र चोले का नाश करता हूं (ऊपर से चिन्तामणि पर बिजली गिरती है जिस से वह सृत्यु प्राप्त हो जाती है और चन्द्र सिंह राजा प्रगट होके सोम नाथ का कटार वाला हाथ ला पकड़ता है ।)

चन्द्र०—जना २ शान्त हो महात्मन् शान्त ! धन्य है आप के साहस को किन्तु हमें सत्य के अनुरोध से श्राप को सूचित करते शंका होती है कि यह अबला तो हमारे नीच सन्दनति दीवान की भेजी आप को छलने आई थी ।

सोम०—(शान्त होकर) राधाकृष्ण २ क्या यह दूसरे की प्रेरित की हुई आई थी ? तब तो इसे जीव दान देना उचित है । चलो यह भी अच्छा हुआ वास्तव में नीचों की नीचता से खरे खोटे की जांच सहज में हो गया करती है । (चिन्तामणि को जल छिड़क कर जीवित करते हैं ।)

चन्द्र०—धन्य महात्सन् आप ही जैसे महात्माओं के
तपोबल के प्रताप से यह पृथ्वी स्थिर हो रही है।
चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं।

चिन्ता०—(सावधान हो कर प्रणाम कर) धन्य गुरु जी
मैं महा नीच पापिन हूं, अब आप की कृपा से
नवीन जन्म धारण कर संसारी माया में नहीं
फँसा चाहती सो आप की शरण आई हूं मुझे
गुरुमन्त्र प्रदान कर कृतार्थ करो।

सोम०—श्री राधे कृष्ण २ का स्मरण व ध्यान करो।
तुम्हारा कल्याण होगा

चिन्ता०—(गाती है)
मैं ज्ञान प्रभा ते जागी हरि भजन से ली मेरी लागी ।
तृष्णा सब मन की त्यागी जीय की सब दुबिधा भागी ॥
गुरु ज्ञान आनन्द की प्रेमवीणा बाजी ।
कृष्ण भजन केरी लगनि जी में लागी ॥
हृदयमन्दिर में अखण्ड प्रेम ज्योति जागी ।
स्वार्थी संसार सभी दिया मैं ने त्यागी ॥

यवनिका पतन ।

प्रथम अंक ८ दृश्य ।

(स्थान विल्वमंगल का घर)

प्रभावती (गाती २ आती है) राग

स्वामि सुखधाम मोहे स्वामि सुख धाम प्रीतम
हृदय विश्राम—मोहे। चकोरी चन्द्र से घेली जीवन

जीव काम की बेली—सति को सुखद स्वामि नाम
प्रीतम हृदय विश्राम रे ।

वि० सं०—(आ कर स्वयं) न जाने विधाता जोड़ का तोड़
क्यों नहीं मिलाता ? कहीं स्त्री सुन्दरी और रसिक
है तो उस का पति फूहड़ है और मुझे जैसे रसिका-
चार्य्य को कैसी फूहड़ स्त्री से पाला पड़ा है कि मैं
ही जानता हूँ । यह तो परम सौभाग्य से चिन्ता-
मणि जैसी मनोरमा से प्रीति हो गई है तो जैसे
तैसे गुजारा हो जाता है, नहीं तो मेरा क्या हाल
होता ? आज पिताजी के श्राद्ध में रुके रहने के
कारण अब तक अपनी प्राणप्रिया चिन्तामणि के
दर्शन का सौभाग्य मुझे नहीं मिला । मैं कब उसे
निहार के अपने नेत्रों को सफल करूँगा । चिन्ता-
मणि २ क्या हुआ कि तू दृष्टि से दूर है परन्तु मेरे
हृदय में तो तू ही तू बस रही है । तेरे बिना मुझे
सब शून्य प्रतीत हो रहा है । निस्सन्देह आज
देरी बहुत हो गई है । चाहे सो हो जाय उस
अनुपम छटा के बिना निखे मुझे कब चैन है ?
चिन्तामणि २ बस तू ही तू तो है ।

प्रभा०—(पास आ कर) प्राणनाथ ! कहां जाने की
तैयारी है ?

वि० सं०—चल हट परे केवल प्राणनाथ शब्द को याद
कर लिया । जब देखो तब प्राणनाथ २ न तुझे
लटका आवे न सटका न चटका फूहड़ कहीं की ।

प्रभा०—प्राणेश जब कभी आप गणिका और गृहिणी के भेद को समझेंगे तब तुम्हें मालूम होगा। गणिकाएँ स्वार्थिन, कपटिन, निर्लज्जा अपनी चटक मटक से कामान्ध पुरुषों को पायमाल कर छोड़ती हैं। गृहिणी उन के विपरीत परम सुख दे कर गृहस्थ-आश्रम को सार्थक करती है सो स्वामिन् अब भी समझो तो उत्तम है। मध्य रात्रि की अंधेरी में घर से बाहर पैर देना आप को शोभा नहीं देता।

वि० सं०—बस बन्द कर अपनी जवान सैं जाऊंगा निश्चय जाऊंगा अपनी प्रेमिका के पास इसी घड़ी पहुँचूंगा। उस के देखे बिना एक २ क्षण बड़ी कठिनता से व्यतीत हो रहा है।

प्रभा०—प्राणनाथ ! आज आप के पूज्य पिताजी का श्राद्ध है सो श्राद्ध के दिन गणिका के यहां जाना क्या उचित है ?

वि० सं०—हां उचित है, यदि मैं आज वहां न जाऊं तो मेरे पित्रों की अवगति हो जाय अवगति समझी।

प्रभा०—वहां जाने से सुगति होगी ? हरि २ मैं यह क्या सुन रही हूं। हाय पूज्य आर्य्य ! तुम कहां हो ?

वि० सं०—वे तो सर के सीधे स्वर्ग को चले गये। अब यदि तेरी इच्छा हो तो तू भी सर कर उन के पास पहुँच जा सो नित्य की झंझट मिटे आफत टले।

प्रभा०—जो आज्ञा प्राणनाथ ! मैं निस्सन्देह आप के वियोग में सर जाऊंगी, अब आप का वियोग मुझ से सहा नहीं जाता।

वि० सं०—(धक्का दे कर) कल मरती हो तो आज ही मर जा (वि० सं० धक्के दे कर जाता है प्रभावती पछाड़ खा के गिरती है, उसे उस की सखी आके सावधान करती है)

सखी—हे प्रभावती बहिन ! आज तू अचेत कैसे पड़ी है ?

वि० सं० जी कहां हैं ?

प्रभा०—(सावधान होके) वे देव दर्शन करने गये हैं ।

सखी—मध्य रात्रि के समय देवदर्शन कैसे ?

प्रभा०—अपने उपास्यदेव के अपने हृदयेश्वर के हाथ अब मैं क्या करूं ऐसे जीवन से मृत्यु सहस्र गुणी श्रेष्ठ है ।
गाती है राग

सखी प्रीतम कौन मनावे, सोहे छांड वेश्या के घर जावे । स्वामि सेवा हाथ बनी नहीं, गनिका बैरिन कहावे । तजूं गी प्राण वियोग उन के में, स्वामि बिन रहा न जावे ।

इति यवनिका पतन ।

प्रथम अंक दृश्य ९

(स्थान सुन्दर वन)

प्रयाम०—(पधार कर) गाते हैं

ये व्रत मैं ने प्रथम लियो । जो मेरे भक्तन की दुःख दे ताकों नखन विदारों हीयो ॥ १ ॥ जो भक्तन सों बैर करत है परमेश्वर सों बैर करै । रखवारी कों

चक्र सुदर्शन साथे ऊपर सदा फिरे ॥ २ ॥ पराधीन
 हों अपने भक्तों का कारण अवतार धरें ।
 यह है अटल प्रतिज्ञा मेरी अभिमानी को गर्व हरे ॥ ३ ॥
 भजते भजो तभी नहीं कबहूँ सुनि नारद परम
 अभिलाखी ॥ परमानंद दास को ठाकुर अखिल
 भुवन सब साखी ॥ ४ ॥

नारद—(आकर) जय जय प्रणतपाल भक्तवत्सल प्रभु
 आप की सदा जय ।

श्याम०—आये नारदजी कहो विल्वमंगल को उपदेश
 कर आये ?

नारद—मैं तो क्या यदि साक्षात् ब्रह्मा भी जाकर उसे
 उपदेश दें तो भी कुछ फल सिद्ध न हो ।

श्याम०—(मुसकरा कर) जैसे ग्रहों में चन्द्रमा गायों में
 कामधेनु नदियों में गंगा उत्तम है वैसे और सब
 में मेरे भक्त श्रेष्ठ हैं चिन्तामणि को सोमगिरि
 महात्मा से उपदेश दिवा सत्पथ पर आरूढ़
 कराया है । अब विल्वमंगल को सद्बोध होने की
 तैयारी है ।

नारद—यह कैसे ?

श्याम०—मुझे सब सामर्थ्य है । अब तुम शीघ्र ही विल्व-
 मंगल को चिन्तामणि के उपदेश से भक्तशिरोमणि
 होता देख सकोगे । मैं भक्त को उस के हृदय में
 निवास करने की आज्ञा देता हूँ । (ताली बजाते
 ही भक्ति का प्रादुर्भाव होता है ।)

नारद—धन्य प्रसो ! आप की लीला अपरम्पार है ।

श्याम०—(भक्ति से) तुम बिल्वसंगल के हृदय में जा के वास करो ।

भक्ति—जो आज्ञा (कह के चली जाती है)

श्याम०—जो जन प्रिय मोहे न बिसारे ताहे न बिसारूँ
छिन एक घड़ी रे । जो मोहे भजे भजूँ मैं वा को
भक्तन हित यह टेक धरी रे ॥

नारद—जै जगजीवन श्यामघनसुन्दर अभिराम त्रिभु-
वन धनी रे । पूरण फलदायक लायक जगहित
अकथ ईश्वर सुकृति बनी रे ॥

श्याम०—ध्रुव प्रह्लाद निज भक्तनहित बारम्बार अवतार
धरी रे । खम्भ फोर हरनाकुश मारयो ध्रुव जी की
अविचल पदवी करी रे ।

नारद—प्रणतपाल परमेश्वर नटवर विमल वेदवाणी
श्री मुख उचरी रे । अमीरस अमृतपान करायो मगन
भयो सुन आप कृति रे ॥

श्याम०—पाण्डव भक्तों की रक्षा काजे लाक्षागृह की
अग्निनी हरी रे । दुपद सुता जब टेर सुनाई कौरव
सभामय घोर करी रे ॥ (प्रस्थान)

यवनिका उत्थान ।

प्रथम अंक १० दृश्य ।

(नदी किनारे का चिन्तामणि का दिव्य मवन । किवाड़
बन्द किये लज्जे पर चिन्तामणि सो रही है पार से

तैरता हुआ विल्वसंगल आ रहा है ।)

वि० सं०—(नदी में से निकल भीजा हुआ आ कर)
 बड़ी कठिनता से यहां आ पहुँचा अब शीघ्र चल
 कर चिन्तामणि को निरखूँ (दरवाजा बन्द देख)
 हैं ! किवाड़ तो बन्द हैं ! मैं ऊपर कैसे जाऊँगा ?
 (छज्जे से एक सर्प को लटके देख) वह देखो मेरे
 लिये प्राणेश्वरी ने रेशम डोर लटका रखी है ।
 धन्य चिन्तामणि धन्य तेरा स्नेह ! तुझे अवश्य
 मेरे आने का निश्चय होगा तभी तो मेरे लिये रेशम
 डोर लटका रखी है । अब मैं इसे पकड़ ऊपर
 जाऊँ और अपनी मनमोहिनी मनोरमा को कण्ठ
 से लगाऊँ (ऊपर चढ़ के जाता है, चिन्तामणि
 के पास जा उसे सोई हुई देख)

कमल नैन को देख के मित्यौ हिये को शूल ।

उठ चिन्तामणि भेट ले भयौ दैव अनुकूल ॥

चिन्ता०—(अर्द्ध निद्रा में) श्री राधे कृष्ण २ ! कौन है ?

वि० सं०—(स्वयं) हैं ! यह आज राधा कृष्ण २ कह के क्यों
 बड़बड़ा रही है ? क्या मुझ से अधिक इसे किसी
 राधे कृष्ण नामक दूसरे मित्र से प्रेम तो नहीं हो
 गया है ? (प्रकट) प्यारी चिन्तामणि ! सावधान
 हो देख तेरा उपासक सेवक मधुर वचनामृत सुनने
 के लिये परम उत्कण्ठित हो रहा है ।

चिन्ता०—(सोते २) हैं इस घोर रात्रि के समय कौन है ?

वि० सं०—मैं विल्व संगल हूँ और कोई नहीं है ।

चिन्ता०—(चठके) हैं तुम यहाँ कैसे ? किवाड़ तो बन्द
थे तुम यहाँ कैसे आये ?

वि०सं०—तैने ही रेशम डोर लटका रखी थी उसे पकड़
यहाँ चला आया हूँ । और कैसे आता ?

चिन्ता०—क्या कहा ? मैंने रेशम डोर लटका रखी थी ?
कब और कहाँ ? चलो मुझे दिखाओ वह रेशम
डोर कहाँ है ।

वि०सं०—चलो प्यारी दिखाता हूँ ।

चिन्ता०—(नीचे आ दिखा के) हैं ! यह रेशम की डोर
है कि विष घर काला नाग है ।

वि०सं०—अरे हां यह तो जहरी सर्प है ।

चिन्ता०—तुम नदी पार यहाँ तक कैसे आये ?

वि०सं०—तुम्हारी मेजी नौका पर चढ़ कर ।

चिन्ता०—(स्वयं) निस्सन्देह नौका में भी कोई सर्प
को समान चमत्कार होगा. (मगट) वह नौका
कहाँ है ?

वि०सं०—(हाथ से किनारे की तरफ दिखा के) वह
देख सामने पड़ी है ।

चिन्ता०—(देख कर) हैं यह नौका है कि किसी की
सूत देह ?

वि०सं०—(देख के चौंक कर) निस्सन्देह यह तो कोई
मुरदा प्रतीत होता है । देखा मिले । तेरे लिये
प्राणों की कुछ भी परवाह बिना किये मज्ज रात्रि
को कैसी कठिनता से यहाँ पहुँचा हूँ ।

चिन्ता०—अरे ओ कामान्ध जैसे पतंग दीपक में पड़ कर सर्प मुरली की नाद पर हरिण वीणा के शब्द पर मच्छी कांटे में लगे हुए अन्न पर स्नेह करने से नाश हो जाती है ऐसे तू भी विषयान्ध हो के आज अपना विनाश करने को यहां आया जान पड़ता है ।

वि०सं०—हे चिन्तामणि २ आज तुझे क्या हो गया है ? आगे तो ऐसा प्रलाप तेने कभी नहीं किया था वह आनन्दप्रद मधुर सुसकयान टेढ़ी चितवन तेरी प्रेमभरी लीला कहां गई ? आज तुझे क्या हो गया है ? किसी ने भरसा तो नहीं दिया है ? ।

चिन्ता०—मैं अब व्यभिचारणी नहीं रही परम गुरु देव सोनगिरि जैसे महात्मा की कृपा से उस चितचोर की अनुरागिनी बनी हूं ॥

वि०सं०—किस चितचोर की अनुरागिनी बनी हो ? ऐसा परम सौभाग्यवान वह कौन है ? मैं भी तो सुनूं ॥ (स्वयं) हा दुर्भाग्य अब जो तू न सुनावे वह थोड़ा है हां मैं समझा आज घर में रोती कलपती बिलपती अपनी सती साध्वी का तिरस्कार करके आया हूं उसी पाप का उदय हुआ जान पड़ता है (प्रगट) क्या रहे सच्चे प्रेम का यही उपहार है ?

चिन्ता०—तुम सच्चा प्रेम जानते ही नहीं । तुम्हारे जैसे कामान्ध विषयलम्पट प्रेमी नामधारियों को

धिक्कार है । वारम्बार धिक्कार है ।

जैसा हेत हराम में वैसा हरि में होय ।

चला जाय वैकुण्ठ में पला न पकड़े कोय ॥

(ऊपर से भक्ति उतर के वि० सं० के हृदय में निवास करती है)

वि० सं०—हा ! मैं क्या सचमुच भूला हुआ हूँ । हा !

अमृत फल छोड़ उसकी गुठलियों छिलकों पर ला-
लायित हो रहा हूँ । निरसन्देह मैं पृथिवी पर
भार रूप हो रहा हूँ । धन्य मातेश्वरी धन्य आज
तुम्हारे सद्बचन रूपी बोध से मेरे हृदय के चक्षु
खुले हैं । कहिये अब मेरा क्या कर्त्तव्य है ?

चिन्ता०—और क्या कर्त्तव्य है जिस अटल प्रेम को मुझ
में जोड़ घोर मध्य रात्रि को यहाँ आये मुरदे को
नौका समझ उस पर सवार हुए विषधर जहरीले
सर्प को रेशम डोर जान पकड़ के ऊपर चढ़े उसी
अटल प्रेम को उस नव धनश्याम पूर्णकाम श्याम-
सुन्दर में लगाइये ।

वि० सं०—अहा ! निरसन्देह आप का कथन सही । धन्य
माता जी धन्य आज से तुम मेरी ज्ञानदाता गुरु
हो । हाय मुझे धिक्कार है वारम्बार धिक्कार है अमृत
छोड़ जहर में सुख मना उस आनन्दकन्द की भक्ति
छोड़ ऐसा विषयान्ध बना कि आज पूज्य पिता
जी के आहु के दिन अपनी सती साध्वी पति-
व्रता को जल बिन मीन वत् नड़फती छोड़ कुत्तों

की तरह यहां आया । अब जी के ही क्या करूंगा
(सरने की तैयार होता है)

आकाश—(नैपथ्य से) हा ! हा !! ऐसा साहस मत
करो । “सोमगिरि जी से उपदेश ले लीन होय भक्ति
से ब्रज में जाय । मन कृत रहस्य लीला गान करो
मैं तुरत मिलूंगो आय”

चिन्ता०—सावधान भाई सावधान तुम्हारे लिये आकाश-
वाणी में आज्ञा हुई है कि ब्रज में तुम्हें साक्षात्
नारायण के दर्शन होंगे ।

वि०मं०—यह सब तुम्हारा ही उपकार है

(गाता है) राग

अब मेरी हरि नाम सों ली लागी

इति प्रथम अंक समाप्त ।

द्वितीय अंक प्रथम दृश्य ।

स्थान जंगल का रास्ता ।

मन्दनति०—(साधु वेष में आकर) यह मेरी तीव्र बुद्धि
का नमूना है । सोमगिरि की परीक्षा के फल से
मुझे देश निकाला हुआ है । किन्तु मैं क्या कच्चा
थोड़ा ही हूं । झट कपड़े रंग महात्मा साधु बन
देशाटन को निकल पड़ा । अब लोगों को ठग २
के चैन करूंगा । तब तो केवल प्रधान ही बना था
किन्तु अब बना हूं योगिराज से महाराजाधिराज
से योगिराज क्या कम होते हैं ? धन्य मेरी तीव्र-

बुद्धि (जाता है)

(यवनिका उत्थान)

२ अंक २ दृश्य ।

(स्थान सोमनाथ की भोंपड़ी शिष्यों सहित
भजन कर के गा रहे हैं)

राग विहागरा ।

हरिभक्ति बिन अति दुख पाई । ना कुछ कीयो
लीयो न जग में सुजस जीवते भली कमाई (टेक)

रक्ष्यो दस सास जठर अग्निनी में जहां अति दारुण
दुख पाई । करी करुणा तोहे बाहर निकारयो दिन २
साया अति लिपटाई ॥१॥ भयो वर्ष पांच खेलवे निकारयो
नहीं कुछ ज्ञान बहुत लड़काई । कछु न बढ़ो भयो तब
बोलेयो जब जब जोर करे तरुणाई ॥२॥ घर की नारि
देख ते हारी जब लग्यो इत चत चित भटकाई । बन्यो
खेल तब घर से निकारयो गिनत नहीं सिर चढ़ी मस्ताई ॥३॥
देखत नार पराई टोकत गावन लग्यो दोहा चौपाई ।
भयो निरलज्ज पाप के बरते भली बुरी कछु चित नहीं
आई ॥४॥ बढ़यो गृहस्थ चिन्ता मन बाढ़ी महा पाप की
करी कमाई । अति चतुर कौआ की नाई जाय बिछा में
घोंच हुवाई ॥ ५ ॥ सब सों कहे मो सम नहीं कोऊ
अपनी करत बड़ाई । ऐसे अपनो जन्म बितायो पुनि
बुढ़ापो पहुँच्यो आई ॥६॥ मानत नहीं सीख कोऊ घर
की बोलत गारि देत लुगाई । दुख पावत मन ही मन

रोवत जो कलु होय तो अन्न मर जाई ॥९॥ अवश सुने
 देखे नहीं नैनन भई दशा अति ही करुणार्थ । वल्लहीन
 खाट में सोयो सुत नाति सब देख हँसाई ॥८॥ पहुँचयो
 आय काल निर ऊपर यम दूतन ने आस दिखाई ।
 ले गये पकड़ फाँसी गले डारी जहाँ सबन की जुरी
 अथाई ॥९॥ पटक्यो जाय महा नरकन में ताकी पुनि
 कलु खबर न पाई । यह संसार के अन्ध कूप में पुनि २
 इत उत गोता खाई ॥१०॥ यह विचार देवी जीव जीय
 अपने बार बार तो सों कहूँ समझाई । लाख कोटि की
 एक बात है भजले श्री वल्लभ सुखदाई ॥११॥

हरि भक्ति बिन अति दुख पाई ।

वि०मं०—(आकर स्वयं) हा मैं कैसा कुकर्म हूँ मेरे जैसे
 महान् अधर्मियों का भार धरती कैसे सहारती
 होगी ? (सो० के पास जा दंडवत् कर के) जय
 जय जय गुरु देव महाराज की सदा जय ।

सोम०—जय आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र व्रन्दावन विहारी
 की सदा जय । अच्छा तू कौन है ?

वि०मं०—मैं जाति का ब्राह्मण हूँ और मेरा नाम विल्व-
 मंगल है । भूठी संसारी माया से संतापित होके
 आप की शरण आया हूँ सो मुझे उपदेश दे
 कृतार्थ करौ ।

सोम०—बेटा तुझे तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ जान पड़ता
 है सदैव तेरी वृत्ति ऐसी रहेगी इस का क्या भरो-

सा ? सो निवृत्तमार्ग में प्रवेश करने के पूर्व एक
बार पुनः भली भाँति विचार ले ।

वि०मं०—मेरे कोई कटुस्वी नहीं है । माता पिता की
बांध्य सब यहां से चल बसे सो हे गुरुदेव अब
मेरा चहुँदर करो मैं आप की शरण हूँ ।

सोम०—शान्त हो बेटा शान्त हो सन्तों की शरण वृथा
नहीं जाती जो लोग भगवद्भक्ति छोड़ विषयों में
फँसे रहते है वे अन्त में अवश्य विनाश को प्राप्त
होते हैं । जगत् जड़ है स्वप्नवत् है । केवल जगत्-
कर्ता सत्य है तू उस आनन्दकन्द व्रजचन्द्र राधा-
रमण कुंजविहारी का स्मरण कर तेरा परम
कल्याण होगा । (शिष्यों से) बेटा रगड़ नाथ
भगवत् प्रसादी वस्त्र पहनने के लिये दे ।

रगड़ नाथ०—जो आज्ञा गुरुजी । (वि०मं० को साथ
लेकर जाता है)

नारद—(आकर दूर ही से स्वयं) निस्सन्देह विलम्ब-
मग्न साधु हो गया सो भी इस की परीक्षा करना
उचित है । देखूँ तो सही इसे अपनी देह पर
कितनी समता है सो अपने तपोबल के प्रभाव
से महात्मा सोमगिरिजी के प्राण को सन के
ब्रह्मांड में ले जाके उन्हें सुतक समान करके स्वयं
वैद्य बनके सब की परीक्षा करता हूँ । (भुरकी डाल
के जाता है) (अकस्मात् सोमनाथ जी दो हिच-
कियें लेकर सुतकवत् हो जाते हैं । सन के शिष्य

चबराते हैं, गुरुजी की दशा पर शोकित होते हैं)

शिष्य—अरे हाय यह क्या होगया अभी एकाएक यह कैसा वज्र टूटा गुरुजी बोलते क्यों नहीं अरे कोई दौड़ो २ शीघ्र किसी वैद्य को बुलाओ ।

नारद—(वैद्य के वेष में आकर) मत चबड़ाओ मैं घन्घन्तरि के समान वैद्य हूँ तुम्हारे गुरु जी की उचित चिकित्सा करूँगा ।

शिष्य—बड़ी अनुग्रह होगी देखो २ हमारे गुरु जी अभी तो घातें कर रहे थे हाय इतने में यह क्या होगया ।

नारद—(देख कर) शोक तुम्हारे गुरु जी तो परम धाम को पहुँच गये । रोग की दवाई हो सकती है कुछ आयुष्य की नहीं ।

शिष्य—क्या सचमुच गुरुजी परमधाम पहुँच गये अरे ओ हाय गुरुजी कहाँ गये (रोता है)

वि०सं०—(आकर देख के) हैं । यह क्या होगया ? हा गुरु देव आप कहाँ चले गये (रुदन करता है) ।

नारद०—एक सपाय है किन्तु जरा कठिन है यदि तुम करो तो तुम्हारे गुरु जी पुनः जीवित हो सकते हैं ।

सब०—वह क्या शीघ्र कहिये हम अवश्य करेंगे ।

नारद०—तुम में से कोई अपनी आयुष्य गुरुजी को देकर आप इनके बदले में मरे तो तुम्हारे गुरुजी अभी जीवित हो सकते हैं (सब के होश दंग हो जाते हैं) एक दूसरे का मुँह देखते हैं ।

एक—मैं चौका साफ़ किये जाता हूँ (जाता है)

दूसरा०—मुझे बर्तन सांजने हैं सो सांज आऊं (जाता है)

तीसरा०—मैं भण्डारे की संभाल कर आऊं (जाता है)

चौथा०—मुझे भाडू लगानी है । (जाता है)

पांचवां०—मैं दिशा जंगल जा के आता हूं (जाता है)

छठा०—मुझे लोटा साफ करना है सो कर आऊं (जाता है)

वि०सं०—(स्वयं) गये सब गये मेरी देह किस काम आवे-
गी (प्रगट) मैं तैयार हूं वैद्यराज यह मेरी देह
यदि गुरु चरणों के काम आवे तो मैं अपना परम
सौभाग्य मानूं । कहिये अपनी आयुष्य किस प्रकार
से देती होगी ?

नारद०—(नन में) धन्य भक्तराज धन्य (प्रगट) तुम तो
आज ही शिष्य बने हो सो क्यों वृथा मरते हो
जैसे ये सब भाग गये हैं वैसे तुम भी यहां से पला-
यन कर जाओ ।

वि०सं०—प्रभो ! आप यह क्या कहते हैं । अपने कल्प-
वृक्ष समान गुरु देव श्री गोविन्द भगवान से मि-
लाने वाले गुरु देव के लिये मुझे मरना पड़ता है ।
कहिये इस से बढ़ कर और मुझे परम सौभाग्य का
समय कहां मिलेगा ? देह तो क्षणभंगी है एक न
एक दिन इस का नाश होवेगा ही मैं नया शिष्य
हूं तो क्या हुआ ? नई तलवार जैसे शत्रुओं का
शिर छेदन करती है वैसे इस हाड़ चाम के शरीर
को अपने गुरुदेव के चरणों पर निछावर करने को
तैयार हूं ।

नारद०—अच्छा तो संकल्प करके अपनी आयुष्य इन्हें दो ।

वि०मं०—जो आज्ञा (हाथ में जल लेकर) जिस गुरु सेवा को श्री रामचन्द्रजी ने किया, जिस गुरु सेवा काज श्रीकृष्ण पाताल में गये परशुराम भोजन सुधन्वा आदि आर्य्यगण जिम गुरु सेवा के महत्त्व को स्थापन कर गये आज मैं उसी महत्त्व मय सुअवसर को प्राप्त होकर

(दोहा)—कल्प वृक्ष सम परम गुरु जिन दियो गोविन्द
बताय । तिन्हें निज आयुष्य मैं देत हूं चित मन सु
हर्षाय ॥

(सूच्छित हो के गिर पड़ता है)

नारद०—(स्वयं) धन्य विल्व संगल तुम्हें लाखों बार
धन्य तुम्हारी जांच हो गई । आहा ! निस्सन्देह
भक्ति का प्रभाव ऐसा ही होता है ।

जाते हैं—

देख्यो मैं उत्तम भक्त प्रमाण

ज्ञानवन्त भक्तिशिरोमणि विजयी भयो सुजान

गुरु हित जिन अरपे निज प्राण—

भक्ति का काप लगी दूढ़ जाके भाग्यशाली गुणवान

हे हरिभक्त उत्तम सुजान

अब मैं इन के गुरु की जागृत करके जाऊं वे

विल्व संगल की स्वयं जिवा लेंगे (जाते हैं)

सोम०—(जागृत होके) अरे शिष्यो ! कहां चले गये ?

अरे बेटा रगड़नाथ !

शिष्य— (विषमय युक्त आकर) जी गुरु जी आये ।

सोम०—तुम सब कहां चले गये थे ? (वि०सं० को पड़े देख) हैं ! यह यहां कैसे पड़ा है ?

एक शिष्य०—आप की अकस्मात् मृत्यु हो गई थी उस समय एक वैद्यराज आये और उन्होंने कहा कि कोई अपनी आयुष्य गुरु महाराज को दे तो यह पुनः जीवित हो सके हैं सो यह बुन हम सब तो भाग गये विल्वसंगल ने आप की आयुष्य प्रदान की इसलिये यह आप के बदले मृत हो पड़ा है ।

सोम०—(चौंक कर) आहा धन्य विल्वसंगल धन्य ! पर्वत २ में चन्दन नहीं होता सब मृगों में मृगमद नहीं होता सब नदियां गंगा के समान नहीं हो सकतीं । निस्सन्देह तुम्हारे समान शिष्य परम दुर्लभ है धन्य तुम्हारी परोपकारिणी वृत्ति धन्य तुम्हारा वैराग्य जैसे लोभी माया को देख के सागर चन्द्रमा को देख के उछलता है वैसे ही तुम्हारे प्रेम से आज मेरा हृदय उछल रहा है । आज तुमने अपने गुरु-प्रेम की अवधि कर दिखाई है (और शिष्यों की ओर देख कर) कहां पेटू स्वार्थी शिष्य थे और कहां शुद्ध सात्विक तुम, जितना तुम्हें धन्यवाद दूं उतना थोड़ा है (शिष्यों की ओर देख कर) और जितना इन्हें धिक्कार दूं उतना थोड़ा है (हाथ में जल लेकर) हे भगवत ! यदि मैं ने कुछ भी सुकृत किया है तो विल्वसंगल पुनः जीवित हो के उठ बैठे (पानी छिड़कता है)

वि० सं०—(उठते २) सद् गुरु देव की जय २

सोम०—कल्याण हो बच्चा कल्याण तेरी सदा सर्वदा जय होगी । तैने मेरे लिये अपने प्राण की समता कुछ नहीं की । धन्य तू—मैं तुझ पर परम आलहादित हुआ हूँ ।

वि० सं०—मैंने अपने कर्तव्य से कुछ अधिक नहीं किया न मुझ से कुछ आपकी विशेष सेवा ही बनी है ।

सोम०—तुमने वह सेवा की है कि जिसकी कोई उपमा ही नहीं हो सकती । अब मैं तुम्हें अन्तःकरण से आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति अचल रहेगी । तुम उस चितचोर के भक्तों में शिरोमणि गिने जाओगे । अब मेरी आज्ञा से ब्रज में जाओ, वहां पर तुम्हारा प्रकाश सूर्यवत् प्रकाशित होगा ।

वि० सं०—जो आज्ञा (राग विहागरा)

अरे मन तू निशंक हूँ नाच्यो ।

लोक वेद की कानि न मानी परनारिन संग राच्यो ॥१

क्रिये कर्म सब मन के भाये मान्यो संवार तें सांच्यो ॥ रसिक दास जन सोई सुधरा श्री वल्लभ सुख वांच्यो ॥ २ ॥

पुनश्चः

कृष्ण भजन लागे प्यारो अब मोहे कृष्ण भजन लागे प्यारो । कब देवेगा दर्शन बंसी वारो ॥ नट नागर रूप उजागर पियारो । निज जन हित गिर

गोवर्धन चारयो ॥ दासानुदास शरण में आयो कर
गहे पार उतारो ।

यवनिका पतन ।

२ अंक ३ दृश्य ।

(स्थान चिन्तामणि का घर)

चिन्ता०—(बहुत से साधुओं को साथ लिये गाती २
आकर)

राग विहागरा ।

मना रे तेने जन्म धार कहा कियो ? श्री गिरधर
सेवा रस नाहीं श्री वल्लभ शरण न लियो ॥ १ ॥
कर अपघात कियो अपसाधन मूल तत्त्व नहीं
चीन्हो । मानुष देह चिन्ता मन पाई विषय
वासना भीन्यो ॥ २ ॥ श्री गोवर्धन श्री यमुना तट
क्षया भर वास न कीन्हो । रसिक दास जन कहाँ
लों वरने वा सम नहीं मत हीनो ॥ ३ ॥

साधु०—बोल श्री राधारमण कुंजविहारी की जय !
चिन्तामणि मात की जय ! !

कुटिला०—(चटक मटक से आके) अरे हाय हाय ये मुए
जोगटे कौन हैं ? (स्वयं साधुओं से) तुम कौन हो ?
यहां क्यों आये हो ?

साधु०—हम सन्त हैं चिन्तामणि मात से भजन सुनने
आये हैं ।

कुटिला०—(स्वयं) अरे हाय हाय यह तो कोई नंगे लुच्चे जान पड़ते हैं। सब चिन्तामणि नात कहके सम्बोधन करते हैं। कोई सुन्दरी प्यारी कहके तो सम्बोधन ही नहीं करता। हाय हाय अब मैं क्या करूँ (साधुओं से) निकलो यहां से तुम्हारा यहां क्या काम है ?

चिन्ता०—माता जी शान्ति करो इन्हें अपमानित न करो ये सब सन्त हैं।

कुटिला०—चल हट सन्तों वाली हम गणिकाओं का इन सन्तों से क्या सम्बन्ध ?

चिन्ता०—अब मैं गणिका नहीं हूँ अब तो मैं उस चित-चोर वृजकिशोर नंदनन्दन की सच्ची अनुरागिनी बनी हूँ।

कुटिला०—(भुँकला कर) हाय हाय तू यह क्या कहती है ? मेरी तो दुकानदारी सारी गई ? बाहर चार सरदार खड़े हैं उन्हें क्या उत्तर दूंगी ?

चिन्ता०—माता जी जब तक अज्ञान अंधकार छाया हुआ था तब तक तुम्हारी आज्ञा पालन करने में त्रुटि नहीं की किन्तु अब ज्ञान चक्षु मिलने पर यह संसार स्वप्नवत् प्रतीत होने लगा है। इस हाड़ चाम कफ पित्त श्लेष्मा वाली क्षणभंगुर देह से सत्संग के प्रभाव से सर्वोपरि सुख लिया चाहती हूँ। सो मुझे जमा करें।

कुटिला०—हाय हाय सत्यानाश हुआ ! मेरा तो दीवाला निकल गया । मेरी दुकानदारी बरबाद हो गई । मैं इतना जानती तो तुम्हें ५०००) में सोल क्यों लेती ?

चिन्ता०—(सहर्ष) क्या कहा तुम मेरी जन्मदात्री जननी नहीं हो ? तुम ने मुझे सोल लिया था ?

कुटिला०—हां ! पांच हजार रुपयों में, अब मैं क्या करूँ ?

चिन्ता०—(स्वयं) धन्य प्रभो धन्य अच्छा हुआ जो इस कुटिला नायिका के पेट से मेरा जन्म नहीं हुआ । (प्रगट) अब अब तक मैं तुम्हें जननी समझ के जो आदर देती थी सो मेरा भ्रम दूर हुआ अब मैं निर्भय हरि-कीर्त्तन करूंगी ।

कुटिला०—मैं तुम्हें साध्वी कब बनने दूंगी (साधुओं पर हमला कर के) निकलो मेरे घर से बाहर यहां तुम्हारा क्या काम है ?

साधु—(जाते २ स्वयं) धन्य चिन्तामणि धन्य तुम तो पृथ्वी पर एक रत्न हो रत्न किन्तु इस नायिकारूपी कीच में फँसी पड़ी हो (प्रकट) जय श्री कृष्ण !

चिन्ता०—जय श्री कृष्ण ! जय श्री कृष्ण !!

कुटिला—(चटक मटक के) हाय ! हाय !! अब मैं क्या करूँ ? अच्छा उन सरदारों की अन्दर बुलाऊँ, उन की चटक मटक से इस का जी ठिकाने आ जायगा (जाती है) चारों विषयी जनों को साथ ले कर आती है ।

एक—चिन्तामणि प्यारी चिन्तामणि तुम कहाँ हो ?

दूसरा—देखते नहीं कि वह साधवी बनी सामने खड़ी है ।

तीसरा—अरे हां यह तो साला फेर रही है ।

चौथा—क्यों पाणेश्वरी आज ऐसी उदास क्यों हो ?

पहिला—रंगभरी रसीली छबीली मनमोहिनी अपने

अधरामृत का पान करा हर्ष कृतार्थ करो ।

चिन्ता०—अरे ओ कामाग्रध पुरुषो ! तुम्हें धिक्कार है

बारम्बार धिक्कार है । तुम अपनी धर्मपत्नियों को

छोड़ यहाँ आये हो । तुम से तो पशु ही अच्छे

हैं जिन्हें स्वकीया और परकीया का ज्ञान है ।

तुम किसी गधैया के पेट में जन्म लेते तो उत्तम

था । अपनी जननी के यौवन को नष्ट करने के लिये

तुम्हारे जैसे कुलांगारों की अपेक्षा भारत रमणियों

के गर्भ में पत्थर पैदा होते तो श्रेष्ठ था ।

एक—लो सुनलो

दूसरा—चलो २ कहीं अन्यत्र चले

तीसरा—यह पागल हो गई है

चौथा—चलो यहाँ से चलो नहीं तो कुछ और टेढ़ी
तिरछी सुनोगे । (सब जाते हैं)

नायिका—(सब को जाते देख स्वयं चटक मटक कर)

हाय हाय अम्ह मैं क्या करूँ ? मेरी दूकन्दारी चौपट

हो गई ! मेरा दीवाला निकल गया ॥ मेरे ग्राहक

लौटे जाते हैं !!! यदि इस सौत रांड को यहाँ

रक्खूंगी तो यह औरों को भी बिगाड़ेगी इस से

इसे अपने घर से निकाल बाहर करूं बस २ यही करूं (चिन्तामणि को दो चार धौल जमा के) निकल रांड मेरे घर से अपना काला मुंह हमें न दिखा ।

चिन्ता०—जो आज्ञा मैं यहां से जाती हूं फिर लौट के नहीं आजंगी (जाते २) धन्य प्रभो धन्य ऐसे पतित घृणित स्थान से मेरा खूब छुटकारा कराया । यह सब आप ही की कृपा है । ऐसे नारकीय स्थान में रहना मुझे कब उचित था ।

राग विहागरी ।

रसना श्री बल्लभ गुन गायो । करत प्रशंसा ऐसी को कवि तिहूं लोग जस छायो ॥ १ ॥ परसत नहीं संसार वासना निसंक निभान बजायो । रहस्य केलि क्रीड़ा रस रोस २ लपटायो ॥ २ ॥ किये तुच्छ अनन्य रस खेल का परमानन्द निधि पायो । रसिक दास जन धन्य सोई नर इन के दास कहायो ॥ ३ ॥

यवनिका उदयान ।

द्वितीय अंक ४ दृश्य ।

(स्थान रास्ता)

माया—(गाती २ आती है)

मैं हूं विश्वमोहिनी माया ।

मैं ने सब जग को भरमाया ॥

भूले ब्रह्मादिक सब देवा ।

सारा जगत करे मम सेवा ॥

कई तपेश्वरी मुझ से हारे ।

केते देव दानव मनुज बिचारे ॥

ऐसी प्रबल त्रिलोक में मैं माया ।

अपने में सब को लुभाया ॥

दो०—अपनी छवि की मोहिनी मोह लिया संसार ।

बिना बिचारे मोक्षों रमत सुध बुध सबै विचार ॥१॥

नारद०—सामने से गाते २ आकर

(राग बिहागरा)

मन रे तू आज हू चेत सवेरो—बड़ी ठौर को नाम
धरावत त्यों २ होय घनेरो ॥१॥ परनिन्दा परवाद
ईर्ष्या संचित जिन उरजेरो । इन बातन में कलु
ना बढ़ेगो जायगो गांठ की तेरो ॥२॥ परम विषय
में डूब रह्यो तू कैसे होय निबेरो । रसिकदास जन
टेर कहत है श्री वल्लभ चरनन चरो ॥३॥

माया०—कौन महामुनि नारद जी ! आप भले मिले ।

नारद०—ओ हो विश्वमोहिनी माया आज तुम मनुष्य
रूप में भूतल पर कैसे ?

माया०—मैं अन्य युगों में पराधीन थी परन्तु अब तो
अपने कलियुग मित्र के राज्य में पूर्ण स्वतन्त्र हूं
सो जगत् की सैर करने निकली हूं । कहिये मेरे
समान और कोई प्रबल धराधाम पर आपने कहीं
देखा है ?

नारद०—नहीं कोई नहीं (मन में) इसका सद उत्तारना उचित है (प्रकट) परन्तु एक गुण से तुम परास्त हो सकती हो ।

माया—वह कौनसा गुण है ? मुझे बताओ तो मैं जानूँ मैं यही जानने के लिये तो घर से यहां आई हूँ ।

नारद०—बताऊँ अच्छा ले सुन विलम्बमंगल इसी रास्ते से व्रज की जा रहा है तू उसे अपने बस में कर के दिखावे तो मैं तुझे प्रबल समझूँ ।

माया—हां ! यह कितनी बड़ी बात है मैं अभी उसे मोहित कर के दिखाती हूँ ।

वि०सं०—(आते २) व्रज में जाऊँ जमुना न्हाऊँ हरि जस के दर्शन पाऊँ । गिर गोवर्धन निरख हर्षाऊँ प्रभु जी के चरणों में चित्त लगाऊँ । गोविन्द के गुण गाऊँ व्रजरज में लोटूँ भाग्य सफल कर अपना पेखूँ ।

माया—आहा ! तुम तो बड़े लायक जान पड़ते हो जरा ठहर के मेरी एक बात तो सुनते जाओ ।

वि०सं०—मातेश्वरी तुम लायक किसे बताती हो मैं तो महा नालायक हूँ । सो मुझे नालायक कहो । लायक भये ध्रुव महलाद जिन हरि को दर्शन पायो । लायक हते विदुर जा घर साग हरि ने रुचि सों खायो ॥ १ ॥ लायक सुदामा विप्र जाने निरन्तर स्नेह हरि सों लगाये । लायक सवरी भीलनी जाके प्रेनवश झूठे फल हरि ने खाये । लायक गोपी ग्वाल जिन हित नन्दनन्दन क्रीड़ा

करी । लायक कुब्जा दासी जाकूं प्रभुजी निज पट-
रानी करी ।

माया—हां मैं समझी तुम मुझे बातों में उड़ाते हो किन्तु
मुझे आपकी परमावश्यकता है ।

वि० सं०—कहो तुम्हें मेरी क्या आवश्यकता है ।

माया०—मैं उत्तम कुल की कुमारिका हूं । आज प्रातः-
काल से प्रतिज्ञा कर के निकली हूं कि जो कोई
मुझे प्रथम मिले वह चाहे जैसा हो रोगी हो
निरोगी हो जोगी हो भोगी हो चाहे सो हो उसे
अपना पति बनाऊं सो सौभाग्य से आप मुझे
मिल गए हैं अतएव मेरा पाणिग्रहण कर के मुझे
सुखी करो ।

वि० सं०—मैं तो स्वयं स्त्री हूं सो तुम्हारा पाणिग्रहण
कैसे करूं पुरुष तो केवल दो हैं एक नर और दूसरे
नारायण ।

माया—ऐसा न कहो मूखोंवाले सभी पुरुष हुआ करते हैं

वि० सं०—यह कहाँ का सिद्धान्त है कि मूखों वाले
सभी पुरुष होते हैं ? पशु के जैसे पीछे पूंछ
होती है वैसे ही मनुष्य के आगे मूँछ होती है ।
धन्य जिन्होंने की मूँछ जे सदा स्वधर्म में वरते । धन्य
उनहों की मूँछ जे सदा परमार्थ करते । धन्य जिन्होंने
की मूँछ जो अड़सठ तीरथ नहाये । धन्य जिन्होंने की
मूँछ जो श्री हरि के भक्त कहाये । धन्य २ उन की
मूँछ जिन प्रभु सेवा से सार्थक करी । विषय वासना
में फँस रहे मूँछ नहीं है उन की पूछड़ी ॥

माया—खाली बातें न बनाओ मैं पतिव्रता हूं मेरी टेक
निभाओ नहीं तो तुम्हें बड़ा भारी दोष लगेगा ।

वि०मं०—तेरे टेक ही कहाँ है ? यदि होती तो मेरे पूर्व
तुम्हें एक महात्मा और मिले थे उन्हें न वर लेती ।

माया—(स्वयं) निस्तन्देह यह कोई त्रिकालदर्शी महात्मा
जान पड़ते हैं । मुझे प्रथम नारद जी मिले थे सो
इन्होंने ज्ञान लिया । ऐसे महात्माओं से कल
करना मूर्खता है (प्रगट) अच्छा तो मैं जाती हूं ।

वि०मं०—(जाते २) त्र० में जाऊं जसुना नहाऊं (इत्यादि
बोलता २ जाता है)

नारद—(माया से) कहो अब मित्राज कैसा है ?

माया—(हाथ जोड़) ठंडा है । आप की कृपा से मेरा सद्
चरित्र गया मैं हार गई ।

नारद—देखा न, ऐसे ही महात्मा पुरुषों के प्रताप से
इस कलियुग में भी सतयुग चरत रहा है ।

माया—निस्तन्देह मुनिनाथ ऐसा ही है ।

नारद—अब तो तुम्हें वह घमंड नहीं रहा ?

माया—बिलकुल नहीं रहा ऐसे महान् पुरुषों से मैं एक
बार नहीं सौ बार हारी ।

नारद राग विहागरा

मन को वेग पवन सों भारी—कबहूँ राजसिंहासन
चाहत हयगज की सवारी ॥१॥ कबहूँ ज्ञान वैराग्य हो
आवत बन बैठत बनचारी । कबहूँ भ्रात कुटिल सुख
चाहत सोवत जाय अटारी ॥२॥ कबहूँ विषय-

वासना चाहत आलिंगन परनारी । कबहूँ सन्त
महा है बैठत कहावत है ब्रह्मचारी ॥ ३ ॥ कबहूँ
चिन्ता शोक समुद्र में डूबत होय दुखारी ।
रसिक दास की सुन लीजे वांग धीस बलिहारी ॥४॥

यवनिका पतन ।

द्वितीय अंक ५ दृश्य ।

स्थान जंगल का रास्ता

मोह—(आकर) मैं महा मोह हूँ मेरे बस में सब संसार हो
रहा है मैं जिसे जैसा नाच नचाना चाहूँ वैसा नचा
सक्ता हूँ मैं प्राणी मात्र के काम, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या,
दम्भ आदि छै शत्रुओं में से सर्वोपरि शत्रु विश्व-
विजयी महा मोह हूँ ॥

नारद (स्वयं गाते २ आते हैं)

अरे मन अज हूँ मेरी मान ।

चदर भरन हित घर २ डोलत जैसे सूकर स्वान ।
सौ मन भार चोरी को लावत करत सुई को दान ॥
चढ़ि चौबारे चहूँ दिस चितवत आवत कहूँ विमान ।
अब हूँ चरण शरण गहे जाकी कहियत कृपानिधान ॥
रसिक दास जन भये अति पावन गावत बड़े पुरान ।
(प्रगट) आहा कौन महा मोहराज आप आज
यहां कैसे ?

मोह-दंडवत् मुनिराज दंडवत् आज मैं भी पृथ्वी पर
विचरने चला आया । हां यह तो कहिये कि आप
ने कोई ऐसा बली देखा है जो मुझे जीत सके ।

नारद०—(स्वयं) इसका सद उतारना भी उचित है
(प्रगट) एक तो यही विल्व संगल है जो व्रज की
ओर इसी रास्ते से जा रहा है जिसने साया को
अभी परास्त कर दिया है ।

मोह-उसकी क्या बिसात मुझे जीत सके । मैंने बड़े २
महानुभावों को डिगा दिया है । अच्छा मैं देखता
हूँ वह कैसा भक्त है । यदि उसे अपने बस में कर
के आप को न बताऊं तो मैं अपना नाम महा-
मोह न रखूँ ।

नारद०—अच्छा २ सब देख लिया जायगा हाथ कंकण
को आरसी क्या ?

वि० सं०—(गाते २ आता है)

हम अधमन की अति रजधानी ।

अनन्त अविद्या बैठी सिंहासन तापर सद की
चंदवा तानी । तृष्णा छत्र धरयो जब ऊपर चमर चहुं
दिशि दुरे अभिमानी । सभा कुसंगति न्याय करत
है धर्म की रीति तनक न जानी ॥ २ ॥ छड़ीदार
असत्य नित बोलत हलकारा खी दूत अभिमानी ॥
काम दीवान लोभ से हाकिम क्रोध फौज की गिनत
न आनी ॥ ३ ॥ ठगनी प्रजा वास बसत है पर
पाखंड निषा जगुरानी ॥ सदन मोर दुरै द्वारपाल

है नहीं आवत साधु जन ज्ञानी ॥ जन्म २ की यह
अवस्था कहां लों बरनत कहां कहानी ॥ रसिक
दाम जन के कोऊ नहीं श्री वल्लभ प्रभु सब सुख-
दानी ॥ ५ ॥

(मोह पिछाड़ी से आके पुष्प सुंघा विल्व मंगल में
प्रवेश करता है)

मोह—(स्वयं) सामने से मंगला गौरी सेठाणी आरही
है उषी पर इसे आसक्त कराता हूं ॥

मंगला०—(सखियों सहित गाती २ आती है)

उत्तम के अस बसे मन माहीं ।

सुपनेहु आन पुरुष जग नाहीं ॥

मध्यम परपति देखे कैसे ॥

पिता पुत्र बांधव निज जैसे ॥

बिन असुर भय ते रहे जोई ॥

जानो अधम नार है सोई ॥

पति वंचक परपति रति करही ॥

रौरव नरक जन्म सत परही ॥

वि०मं०—(मोहान्ध हो कर स्वयं) ओहो यह तो सुन्दरता
नाजुक्ता आदि सब गुणों में बड़ी चढ़ी है । क्या
ऐसी मनोरमा से मैं एक बार प्रेमालिंगन कर के
अपने को कृतार्थ नहीं कर सकूंगा ? (प्रकट) तुम
कौन हो ?

मंगला०—(प्रणाम कर के) जी मैं वन्दना करती हूं । मेरा
नाम मंगला गौरी है । यह सब मेरी सखियां हैं ।

आज घट सावित्री का पूजन करने गई थीं सो वहां से लौट रहीं हैं। अब घर जाके निज पति पूजन करेंगीं क्योंकि आज पति पूजन करने की महिमा अपार है।

वि० सं०—और सन्त पूजन की महिमा का भी आज पाराधार नहीं है क्योंकि साधु निष्प्रह होते हैं।

सखिएँ०—निस्सन्देह सन्त पूजा की महिमा आप के कथनानुसार हो सकती है।

वि० सं०—तुम चाहे जानो या न जानो मैं तो (मंगला को दिखा के) यह माने तब जानूं।

सखिएँ०—(परस्पर) यह कैसा साधु है? यह तो कोई धिकारवान जान पड़ता है।

मंगला०—(सखियों से) ऐसा न कहो महात्माओं की जिस पर पूर्ण कृपा होती है उसी की सेवा स्वो-कार करते हैं। (विलम्बमंगल से) समीप ही मेरा घर है सो कृपा कर के मध्याह्न उपरान्त वहां पधारियेगा। मैं आप की सेवा मली भाँति से करूंगी। (सब जाते हैं)

वि० सं०—अब मैं भी तैयार होके वहां जाऊँ। अहा हा!

ऐसी मनोरमा मनमोहिनी के अथरामृत पान करने का मुझे सौभाग्य कब मिलेगा? (जाता है)

नारद०—(स्वयं) क्या विलम्बमंगल सबमुच बदल गया?

मोह०—देखा मेरा प्रभाव? मैं ने कौसी फैलाई है सत्ता।

नारद०—अन्त में तुम खाओगे खता।

मोह०—अभी क्या हुआ है जरा मंगला गौरी के घर तक चलकर अपने विलम्बमंगल की और दशा देख ली-जिये तब तुम्हें मेरा पूर्ण प्रभाव जान पड़ेगा ।

नारद०—अच्छा २ सब देख लिया जायगा (सब जाते हैं)

यवनिका उत्थान ।

२ अंक ६ दृश्य ।

(स्थान मंगला गौरी का सुसज्जित विशाल भवन)

मंगला—(सखियों सहित गारही है)

सती नारियों का येही धर्म है

शील अंगार पति-सेवा कर्म है

शीलवान वो जाके नेत्रों में शर्म है

साखी ।

पति सोई परमात्मा यही धर्म तप ध्यान

सती को सेवा स्वामि की जा में मोक्ष कल्याण

सती नारि को शील शोभन्तरे

जासु हेम हीरोतणी शोभा मन्दरे

जिन की सर्वोपरि शोभा है कान्त रे

(साखी)

अट्टा के कंकण बने उर में संतोष के द्वार

स्वामिभक्ति के सुहाग पर शील साड़ी श्रीकार

मंगला गौरी का पति—(महा कुरूप कुबड़ा लंगड़ाता हुआ

आकर) क्यों प्रिये ! आज कैसे विलम्ब कर रहा है ?

संगला०—प्राणनाथ ! आज मैं ने एक महात्मा साधु को
निमंत्रण दिया है वह आ जाय तो उस का सत्कार
करके भोजन की तैयारी करूँ ।

पति०—धन्य प्रिये ! धन्य ! ! जैसे तारों में चन्द्रमा फलों
में अमृत फल मणियों में पारस मणि चौपायों में
कामधेनु धातुओं में कंचन नदियों में गंगा उत्तम है
वैसे ही मनुष्यों में साधु उत्तम है । अहोभाग्य !
वह दिन वह घड़ी वह क्षण धन्य है कि जिस
समय किसी साधु महात्मा का गृहस्थी के घर में
आगमन होता है ।

वि०मं०—(आकर) धन्य ! युवती यौवन मन्दिर धन्य ! !
बाहरे विधाता तेरी चातुर्यता की बलिहारी है
आहा कैसा मनोरम भवन है ।

(पति सहित संगला सत्कार करके विल्व संगल को
सिंहासन पर बैठाती है । मोह सहित नारद जी
आकर छिप कर खड़े हो जाते हैं)

वि०मं०—(उस के पति को दिखा कर) सुन्दरी संगला यह
रोगी पुरुष कौन है ?

संगला०—यह मेरा सर्वस्व प्राणाधार परम पूज्य प्राण-
नाथ परमेश्वर है ।

वि०मं०—(उठ के) ऐसे कान्तिहीन रोगी को अपना पति
बता कर मेरा अपमान करती है मैं यहां नहीं
रहूंगा ।

पति—तुम महात्मन् क्षमा मैं यहां नहीं रहूंगा (खी से)
 प्रिये ! महात्मा की सेवा इन की आज्ञा-अनुसार
 भली भांति से करना जिस में ये सन्तुष्ट हों सो
 करने में आगा पीछा न सोचना मैं जाता हूं ।
 (जाता है)

संगला०—महात्मन् मुझे अपने पति की आज्ञा हो चुकी
 है मैं आप की आज्ञानुसार सेवा करने को तैयार हूं
 पहिले चला के भोजन कर लीजिये ।

वि०स०—मैं यहां भोजन करने की इच्छा से नहीं आया
 जब से तुम्हें देखा है भोजन की रुचि जाती रही
 मैं तुम्हारे चन्द्रानन को निरख के तृप्त हो गया हूं।
 मैं यहां विषयभोग की अभिलाषा से आया हूं सो
 मुझे काम क्रीड़ा द्वारा कृतार्थ करो ।

संगला—(साश्चर्य स्वयं) हरि २ ! मैं आज यह क्या सुनती
 हूं । क्या आज सूर्य पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में उदय
 होगा ? चन्द्रमा में से अमृत की अपेक्षा इलाहल
 विष की वृष्टि होगी ? क्या पृथिवी की पोषण-
 शक्ति नष्ट हो जायगी तभी न यह महात्मा विषय-
 लम्पटों की सी बातें कहते हैं कैसा धर्म संकट है ?
 एक ओर अपना सतीत्व धर्म दूसरी ओर साधु-
 सेवा । हा ! अब मैं क्या करूं ? और क्या न करूं ।
 प्रभो ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! जैसे द्रौपदी की
 लाज काज नंगे पैरों धाये थे वैसे मेरी सुध आन
 लीजियो ।

मोह—(गर्व से फूल कर) देखा नारद जी अब मुझे सर्व-
विजयी मानोगे या नहीं ?

नारद—(भुंक्ला कर) ज़रा ठहर तो सही देख अब आगे
क्या होता है ।

वि०सं०—(स्वयं) यह सब क्या होरहा है । हां, हां, मैं
इस पर मोहित हो गया हूँ । (प्रगट) क्यों अब
क्या विचार कर रही हो ? मुझ से आलिंगन कर
के कृतार्थ क्यों नहीं करती ?

मंगला०—जो आज्ञा अभी लो (बहुमूल्य साढ़ी बिछा के)
आइये महात्मन् इस साढ़ी पर पधार के बिराजिये
यह दासी आप के चरण चाप कर आपकी सेवा
करने के लिये विद्यमान है ।

वि०सं०—हा हा ऐसी सुन्दर और बढ़िया बहुमूल्य
साढ़ी को धूर में न मिलाओ ।

मंगला०—इन का मूल्य आप की सेवा से बढ़ कर नहीं
है । निस्तन्देह आज प्रतीत होता है कि जैसे लोभी
धन से सृग सुरीले नाद से पतङ्ग दीपक के प्रकाश
से मोहान्ध हो जाता है वैसे आप को हाड़ चाम
की मेरी गंदी देह पर मोह उत्पन्न हुआ है । जिस
साढ़ी को श्रीमान् बहुत मूल्य की बता रहे हैं उस
साढ़ी का मेरी नापाक देह से करोड़ों अंग जितना
मूल्य भी तो नहीं है (स्वयं) हा भगवन् ! रक्षा करो ।
क्या मैं जिसे महात्मा समझे हुए हूँ वह व्यभिचारी
होगा ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता है ।

भक्ति—(अन्तरिक्ष से आकर) सच्चा कुन्दन सन्त है
सती ससक्त धर धीर । मोह नष्ट मैं करत हूं सन्त
पुरुष नरवीर ।

विल्व०—(चौंक कर स्वयं) हैं ! मैं यहां कहां से ? व्रज
में जाने का मार्ग कहां है ? (याद कर) ओ हो !
मैं ससक्ता निस्सन्देह मैं मोहान्ध हो गया हूं । कहा-
वत है कि सहे के व्यौपार में प्रथम की क्षति श्रेष्ठ
होती है । हलकी चोरी में पकड़ा जाना उत्तम होता
है । आज मेरी यह दशा ! यह सती स्त्री धन्य है
(प्रगट दंडवत् करके) धन्य माता जी धन्य तुम्हारा
उपकार मैं यावत् जीवन न भूलूंगा । आज तुमने
इस अधम को उपदेश प्रदान कर पावन किया है ।
मैं तुम्हारा जितना उपकार मानूं उतना थोड़ा है
(पैरों में पड़ता है)

मंगला०—हैं यह क्या करते हो महात्मन् आप तो ईश्वर
रूप हो ।

वि०सं०—मैं उत्तम नहीं परम अधमाधम हूं । उत्तम तो
आप हो जिन के उपदेश से मेरे ज्ञान चक्षु खुले हैं ।
निस्सन्देह मुझे मोहान्ध हो गया था । डाय मैं
अष्ट इन्द्रियों के मोह में ऐसा अपनी सुध बुध खो-
बैठा था । कहां है मोह ? मैं उसे पूरा दंड दूंगा ।

मोह०—(कांपते २) क्षमा करो महाराज क्षमा करो मैं
आप की शरण हूं ?

वि०सं०—ओ पापी तुम्हें क्षमा ! तेरे तो टुकड़े २ करने उचित हैं । अच्छा शरण आये को कोई नहीं मारता इसलिये तुम्हें छोड़ता हूँ । यह तो बता तू रहता किस स्थान में है ?

मोह०—मूर्खों के नेत्रों द्वारा उन के हृदय में प्रवेश करता हूँ ।

वि०सं०—सत्य है नीच बिना उंच का महत्त्व दुर्जन बिना सज्जनों की शोभा नहीं हो सकती । अन्धेरा होने ही से प्रकाश का आनन्द मिलता है । (मोह से) सो तेरी भी जगत् में परमावश्यकता जान पड़ती है अतएव तुम्हें बिना आप दिये छोड़ता हूँ ।

मोह०—धन्य महात्मन् बड़ी अनुग्रह की ।

नारद०—(मोह से) अब मित्राज कैसा है ?

मोह०—(कांपते २) जी ठिकाने हो गया है (स्वयं) बड़ी कठिनाई से प्राण बचे यही गनीमत है । हरिभक्तों को छोड़ना जरा टेढ़ी खीर है । (प्रगट) निस्तन्देह मुनिनाथ मैं हरिभक्तों से एक बार नहीं हजार बार हारा ।

नारद०—अब तो फिर घमंड न करोगे ?

मोह०—नहीं कदापि नहीं (जाता है)

नारद०—धन्य विल्वसंगल धन्य तुम्हारी जननी को धन्य तुम्हारी परीक्षा हो गई । तुम परीक्षा में पूरे उत्तरे ।

वि०सं० (स्वयं) कहावत है कि—

कहा करे बैरी प्रबल जो सहाय रघुवीर ।

दस सहस्र गज बल तऊ गह्यो न दस गज धीर ॥

आज मैंने तो अनर्थ करने में बाकी कुछ ही नहीं

छोड़ा था, किन्तु उस आनन्दकन्द की कृपा से

निस्तारा मिला । हाय २ आज मैंने हरि-भक्तों

के वेष को लगाया । अरे पापी जीवतू कहां जाते

कहां चला आया । पहले अपनी इन्द्रियों का पूर्ण

निग्रह तो कर लिया होता । ऐसी विषयान्ध अष्ट

इन्द्रियों से प्रभु कैसे मिलेगा ? अतएव इस दुष्कर्म

का पूर्ण प्रायश्चित्त करना उचित है (संगला से)

साता जी कृपा करके दो सुई हों तो मुझे ला दो ।

संगला—भोजन तैयार है कृपा करके पहले भोजन कर

लीजिये फिर आप कहोगे सो ला दूंगी ।

वि०सं०—नहीं-भोजन पीछे पहले मेरा एक कपड़ा फट

गया है उसे सीना है सो सुई लादो ।

संगला०—जो आज्ञा (सुई लेने अन्दर जाती है)

वि०सं०—गाता है राग (विहागरा)

अहो नाथ मेरी कहा गति होई जीव स्वभाव लुटे

नहीं क्षण भर काल सिराने पहुंचयो आई ॥ १ ॥

मनुष्य देह पाय अति उत्तम तिहूं लोक में बात

बिगोई । नहीं प्रमेय बल आप दिखावत जाते

सरवस जात हों खोई ॥ २ ॥ सरन लिये सो को

आस होयगो लीजे विरद आप को जोई । रसिक

दास जन सर्व लोक में श्री वल्लभ तुम बिन नहीं
कोई ॥ ३ ॥

पुनश्चः

अहो नाथ अब सुनिये मेरी-भव सागर संग्राम
बीच में ठाढ़े इत उत नहीं पावत कोउ सेरी ॥१॥
काल धर्म मिल अस्त्र चलावत सिर पर आय
अविद्या घेरी । इन्द्र अश्व चढ़ मन चर लूटत
भगवद्भाव सब जात रहे री ॥ २ ॥ काया कातर
अति अकुलावत दलों दिस आय भई भट मेरी ।
रसिक दास जन श्रीवल्लभ प्रभु अब सब तज मैं
आयो हूं शरणा तेरी ॥ ३ ॥

संगला०—(सुई लाकर) यह लीजिये आप की आज्ञा
अनुसार सुई तैयार है ।

वि०सं०—(लेकर) बड़ी अनुग्रह की बड़ी उत्तेजना से
आज मैं इन्हीं चर्मचक्षुओं के वशवर्ती हो के
विषयान्ध हुआ था, येही मेरे चर्मचक्षु तुम्हारे
रूप पर मोहित हुए थे । हा ! इन्हीं नेत्रों द्वारा
मोह ने मेरे हृदय में प्रवेश किया था । ऐसे दुष्ट
नेत्रों को अब मैं रख के क्या करूंगा ? यह लो
अपने किये का फल भोगो । भगवद् मार्ग से हटा
विषय लम्पट बनाने वाले नेत्रों तुम्हें यही दंड
देना उचित है (जोश से दोनों सुईयों से अपनी
आंखें फोड़ कर) यह लो अब सदा के लिये बन्द
हो जाओ जिस में कभी फिर ऐसा दुष्कर्म करने की

मुझे रुचि उत्पन्न न हो ।

संगला—(घबरा कर) अरे कोई दौड़ो सर्वनाश ।

हाय ! हाय ! यह कैसा साहस !

(संगला के पति आदि आते हैं)

संगला—(विल्व से) महात्मन् ! आपने यह कैसा साहस किया हाय मेरे लिये आपकी यह दशा ! अब मैं जी के क्या करूंगी ।

विल्व०—न घबराओ सती न घबराओ नेत्रों को दंड देना उचित था सो दिया, तुम्हारा उपदेश मैं यावत् जीवन न भूलूंगा । हां तुम्हारा पति कहां है ?

पति—यह दास आप के चरणों में साष्टाङ्ग दंडवत् करता है ।

विल्व०—आओ (हाथ फेर कर) मैं तुम्हें अन्तःकरण से आशीर्वाद देता हूं कि अभी तुम्हें दिव्य देह प्राप्त हो, तुम्हारा सब कुरूप दूर हो जाय ?

(संगला के पति का दिव्य शरीर और महासुन्दर स्वरूप बन जाता है)

पति—(दंडवत् करके) धन्य गुरुदेव धन्य आप तो अनुष्यरूप में साक्षात् हरि भगवान् प्रतीत होते हो ।

विल्व०—यह सब तुम्हारी सती साध्वी पतिव्रता स्त्री के पातिव्रत धर्म का प्रताप है । अब तुम यहां आनन्द पूर्वक रहो । मुझे व्रज के रास्ते में बड़ा दो, मैं लाठी टेकता २ व्रज में चला जाऊंगा ।

सब—धन्य महात्मन् ! धन्य !

सूरदास—गाता है ।

मैं ने विलग किये दोउ लोचन ।

जाते टल गये सर्व विघन ॥

है धन्य आज को दिन ।

भयो मोहे भक्ति पर सौजन्य ॥

मैं तो सांचे पथ अज चढ़ियो ।

सम हृदय के चलु उघड़ियो ॥

आनन्द सागर में पड़ियो हृष्यो मन ।

मैं ने विलग किये दोउ लोचन ।

मंगला—रस्ते में कहाँ फिरिहो ।

अत्र रहे भक्ति करिहो ।

सम विनय सर में धरिहो ।

सूरदास—मोहे व्रज के रास्ते बड़ाअ प्रिय जन

मैं ने दूर किये दोऊ लोचन ।

यदिनका पतन ॥

२ अंक ७ दृश्य ।

स्थान गाँव का बाहरी ग्रान्त

म दमति—(साधु वेश में आकर) चलो यहां अपना
ढंग खूब जमाया है । इस गाँवड़े के लोग मेरा खूब
मान करते हैं, रोज यहाँ कथा सुनने आते हैं ।
मैं भी ऊतपटांग मन आवे जैसी गप्पें सुनाया
करता हूँ । चलो जी पराये धन से मौज करने कराने
का सौभाग्य मेरे जैसे चतुरचूरामणि के सिवाय

और किसको मिल सकता है ? यहां तो सदा पांचों घी में हैं। इन देहाती भक्तों के प्रताप से घी खांड की नदी चल रही है (नैपथ्य में देख कर) यह लो वे सब कथा सुनने आ रहे हैं। मैं सावधान हो जाऊं।

(बहुत से ग्रामीण महाजन जय जय करते आते हैं साथ में त्रिभुवन पुराणी भी आता है)

मन्द०—(त्रिभुवन को देख मन में) आज यह पुराणी क्यों आया है ? अच्छा आज इसे ऐसे बकाऊ कि यह भी छटी की रात याद करे (प्रगट) अहो हो पुराणी जी आज आप कहां से भूल पड़े ? त्रिभुवन—आज आप की कथा सुनने का लाभ लेने मैं भी चला आया।

मन्द०—(स्वयं) तुम कथा सुनने नहीं आये मेरी अशुद्धियां निकालने आये हो। क्या हरज है मैं कच्चा थोड़ा ही हूं (सब से) कहो आज कौन सा प्रसंग सुनावें।

महाजन—महाभारत रामायण सुनाओ।

मन्द०—लो सुनो महाभारत में लिखा है कि

केशवं पतितं दृष्ट्वा द्रोणा हर्षमुपागता ।

रुदनन्ती कौरवा सर्वे हा हा केशव केशवा० ॥२॥

केशव भगवान् को गिरते देख के द्रोणाचार्य को परम हर्ष हुआ और कौरव लोग हाहाकार करके रोने लगे।

सब-हरि हरि ।

त्रिभुवन-असम्भव है ऐसा होना असम्भव है । इस श्लोक का अर्थ यों है कि के नाम जल में श्व नाम मुरदे को गिरते देख कर द्रोण नाम मच्छी का है सो पानी में मुरदे को गिरते देख मच्छी को हर्ष हुआ और कौरव कहते हैं कौओं को सो कौए रोने लगे कि अरे मुरदे तू बाहर क्यों न गिरा । यदि बाहर गिरता तो हम खाते ।

मन्दमति-सफा गप्प तू महाभारत का अर्थ क्या जाने यों तो रामायण में भी लिखा है कि—

राम पतितं दृष्ट्वा हनुमत हर्षमुपागता ।

रोदनन्ति राक्षसा सर्वे हा हा राम कुतो गता ॥

रामचन्द्र जी को गिरते देख के हनुमान जी को परम हर्ष हुआ राक्षस लोग रोने लगे ।

त्रिभुवन-यह भी असम्भव है इस का भी सीधा अर्थ यही है कि राम कहिये पुष्पवाटिका को उजाड़ के हनुमान जी को हर्ष हुआ और राक्षसों को विषाद ।

मन्द०—अब चल हट तेरे जैसे पेटार्थी अर्थ करना क्या जानें महाभारत में साफ लिखा है कि:—

प्रातं चौर प्रसंगेन मध्याह्न द्युतकर्मणी

रात्रौ स्त्री प्रसंगेन कालो गच्छति धीमतां

प्रातः काल चोरी कर के मध्याह्न में जुआ खेल के रात्रि को स्त्रियों से मिल के बुद्धिमान् लोग समय बिताया करते हैं ।

सब—हरी हरी

त्रिभुवन—इस का भी सच्चा अर्थ तुम्हें नहीं आता इस का सच्चा अर्थ तो यों है कि प्रातः काल में श्री मद्-भागवद् के विचार से मध्याह्न को महाभारत के विचार से और रात्रि को रामायण के विचार से बुद्धिमानों को कालक्षेप करना उचित है ।

मन्द०—(सरोष) तुम्हें धर्मशास्त्र की भी खबर है कि वृथा सच्चा अर्थ २ कर के टांय २ करना सीख लिया है । धर्मशास्त्र में साफ लिखा है “ ब्राह्मणस्य महत्पापं सन्ध्योपासनमाचरेत् ” अर्थात् जो ब्राह्मण सन्ध्या करते हैं बड़े पापी होते हैं ।

त्रिभुवन—यह और भी बढ़ कर सुनाई अरे ओ धूर्त इस का भीधा अर्थ तो यों है कि सन्ध्या न करने वाले पापी होते हैं ।

मन्द०—(सब से) देखो जब इन की मैं पोल खोलता हूँ तो यह गाली गलोज देने को तैयार हो जाता है । सच है इन का पेट जलता है । शास्त्र में है कुछ और अपने स्वार्थवश तुम लोगों को कुछ समझाता है ।

सब—ठीक है ठीक है ।

त्रिभुवन—अरे क्या ठीक है २ ऐसी गपोड़ेबाजियों से हृदय में दाह होती है ।

मन्द०—जब तुम्हारी पोल खुलती है तो तुम्हें दाह क्यों न होवेगा । तुम लोग और लोगों को एकादशी

के दिन व्रत रहने का उपदेश देकर भूखे मारते हो।
शास्त्र में साफ लिखा है कि—

एकादशी विशेषण कर्त्तव्यं भोजनं ह्ययं

एकादशी के दिन अवश्य करके भोजन दो दफा करना उचित है। इस के प्रमाण में जगदीश में जा के देख आओ कि मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं। सब-ठीक है ठीक है बाह गुरु जी आप सब सही कह रहे हैं।

त्रिभुवन—कैसे सूखों की सभा है। इस का भी सच्चा अर्थ कुछ और है। वह यह कि एकादशी के दिन दो आहार करने एक तो दिन में हरि कीर्त्तन और दूसरा रात्रि में जागरण। किया क्या जाय वही समझ है कि मां भूली और आप गाजर। यह तो कोई सहा ठग वेश्यागामी जान पहचानता है।

मन्द०—वेश्यागामी क्या बुरे होते हैं ? वे तो और असलबेले होते हैं। तैं ने कभी सुना भी है।

वेश्या तीर्थे सहस्र पुण्यं प्रयागतुल्ये वारांगनः

परनारी पुष्करश्चैव सर्व तीर्थेभ्य रजस्वलः

सब—हरी हरी

त्रिभुवन—क्या हरि २ ऐसे पतित की व्यास आसन पर बैठाते तुम्हें लज्जा नहीं आती।

मन्द०—अबे ओ मुंह सम्भाल के बोल पतित किसे कहता है ? यहां तो चारों वेद (सब हरी २) षट् शास्त्र (सब हरी २) न्याय सीमांसा ज्योतिष सब कंठस्थ है।

त्रिभुवन—हां आप ज्योतिष भी जानते हैं । कहिये
आज चन्द्रमा किस राशि पर है ?

मन्द०—आज अमावस्या है सो चन्द्रमा ३० वां हुआ ।

त्रिभुवन—यह तो और भी गटप मारी भला यह तो
कहो कि आज मघा भाई को कितना चन्द्रमा
हुआ ?

मन्द०—धन मकर कुम्भ सब निकम्मे हैं । मंग भाई को
आज चन्द्रमा सैतीसवां है ।

त्रिभुवन—चन्द्र तो बारह ही हुआ करते हैं ।

मन्द०—तेरे घर में बारह होते होंगे सीधा क्यों नहीं
कहता कि मैं कुछ नहीं जानता ।

सब—ठीक है ?

त्रिभुवन—कहावत है कि

बैठि चलूँ कहूँ छिपि जात कहा गुन जाने प्रभाकर
केरो । पीनसवारो कहा लै करै अब घोरि धरै
घनसार घनेरो ॥ बैठि अबूकन के दरबार कहा
लहिये गुरुबो गुन केरो । आंधरे साहिब के दरबार
कहां लौ करै चतुराई चितेरो ॥ १ ॥

मन्द०—(सब से) देखो अपने पुरोहित की कर्तूत
(त्रिभुवन से) क्यों अब स्वीकार करते हो कि नहीं ।

त्रिभुवन—क्या ?

मन्द०—यही कि तुम विद्वान् नहीं हो ।

त्रिभुवन—हां भाई हां ! तुम्हारे जैसे धर्त के समस्त मेरी
विद्वत्ता कुछ काम नहीं देती । (जाता है)

मन्द०—आज की कथा समाप्त हो गई ।

सब—रामचन्द्र देव की जय ! वाह गुरु जी खूब कथा
सुनाई । क्या कहने हैं चलो (सब जाते हैं)

यवनिका उत्थान ।

२ अंक ८ दृश्य ।

(स्थान नरवर सिंह का राजदरबार वाराणसी नृत्य
कर रही हैं)

(प्रधान जी के साथ में राजपुत्री ललितरमणी
आती है)

नरवर सिंह—आओ प्रधान जी आज विलम्ब से क्यों
आये ? और साथ में ललितरमणी को लाने का
क्या कारण है ?

प्रधान—आप की यह पुत्री परम भगवती है । आज दो
दिन से निराहार उपवास कर रही है इसलिये इन्हें
साथ लाया हूँ ।

नरवर०—ओ क्यों ? इस के उपवासी रहने का क्या कारण है ?

प्रधान—यह एक साधु को भोजन कराये बिना कभी
भोजन नहीं करती । यही कारण है कि साधु की
खोज में मुझे विलम्ब लगा किन्तु बहुत कुछ प्रयत्न
करने पर भी कोई साधु नहीं मिला । ललितरमणी
को दो उपवास हो चुके हैं इस से आप के समीप
लाया हूँ कि आप इन्हें समझा के भोजन करावें ।

नरवर०—बेटी तुम्हें बाल्यावस्था में ऐसा प्रण करना उचित नहीं है सो भोजन कर लो ।

ललित०—नहीं पिता जी मैं जब तक किसी साधु की भोजन न करा लूंगी तब तक कदापि भोजन न करूंगी ।

नरवर०—(स्वयं) धन्य पुत्री की टेक (सेनापति से) सेनापति जी तुम जाके जहां साधु मिले वहां से दूढ़ लाओ ।

सेनापति—जो आज्ञा (जाता है)

नरवर०—बेटी तू नादान न बन । यदि साधु न मिले तो ऐसी हठ करना तुझे उचित नहीं है (प्रधान से) प्रधान जी तुम ललितरमणी को समझाओ ।

प्रधान—जो आज्ञा पृथ्वीनाथ मैं ने इन्हें समझाने में कोई कसर नहीं रखी किन्तु यह अपनी टेक पर दृढ़ हैं । आप की पुत्री पूर्व जन्म की भगवती जान पड़ती है । इन की जितनी प्रशंसा मैं करूँ थोड़ी है । (सेनापति वि०सं० (अब आगे जिन्हें सूरदास के नाम से लिखेंगे) को ले के आता है ।)

नरवर०—आओ महात्मन् भले पधारे आज हमारे अहो-भाग्य किसी महान् पुण्य का उदय हुआ जान पड़ता है ।

सूरदास—राजन् ! पुण्य तुम्हारा नहीं पुण्य किसी दूसरे का उदय हुआ है । हां भाग्य अपना भले कहो ।

नरवर०—(स्वयं) अहो यह तो त्रिकालदर्शी जान पड़ते हैं ।

निस्सन्देह पुण्य तो ललितरमणी का उदय हुआ है, मेरा नहीं ।

ललित०—(स्वयं) आहा ये तो मुझे परम प्रिय जान पड़ते हैं जब से इन्हें देखा है तब से यों ही प्रतीत हो रहा है कि मानो मुझे कोई अपने पूर्व के कुटुम्बी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

नारद०—धन्य महात्मन् आप सर्वज्ञ हैं । कृपा कर के मेरी इस ललितरमणी पुत्री का भविष्य देख के कहिये ।

सूर०—राजन् ! भविष्य सुनने से तुम्हें सुख नहीं होगा हां ललितरमणी सुखी हो सकती है ।

नर०—वह कैसे ? इन्हें सुख होगा और मुझे सुख क्यों न होगा ?

सूर०—हां मैं ठीक कहता हूं । तुम मुझ से वारम्बार क्यों पूछते हो । अपनी पुत्री ललितरमणी से पूछ देखो ।

नर०—क्यों प्रिय पुत्री ! ललितरमणी तुम इस विषय में क्या जानती हो ?

ललित०—(स्वयं) अब तो कहना ही पड़ेगा जो (सूरदास जी को देख) इन की आज्ञा न होती तो न कहती (प्रकट) और तो मैं कुछ नहीं जानती केवल इतना जानती हूं कि:—

नन्दराय है सुसरा मेरो, सास यशोदा सहतारी ।

घिट्ठलवर प्रीतम है मेरो, मोर मुकट पीताम्बर धारी ॥

बैन बजैया धेनु चरैया, नागर नट भक्तन सुखकारी ।

मैं वारी अपने पीतल पर, जो है श्याम सुन्दर गोवर्धन धारी

नरवर०—(स्वयं) ओं हो ! यह तो साक्षात् दूसरी मीरा-
बाई प्रगटी जान पड़ती है । इस का भविष्य
महात्मा के मुख से सुनें तो निश्चय हो (सूरदास से)
कृपा कर के आप इस के भविष्य के विषय में
अवश्य कहिये मैं शपथ पूर्वक आप से सविनय
प्रार्थना करता हूं कि संकोच छोड़ कर कहिये मुझे
इस के भविष्य जानने की परम उत्कंठा है ।

सूर०—इस के भविष्य जानने से तुम्हें किञ्चित् मात्र सुख
नहीं होगा तू रजोगुण के कारण पीछे पड़तायगा
मैं ठीक कहता हूं कि यह हठ छोड़ दे ।

नरवर०—नहीं महात्मन् मुझे अवश्य कहो मैं प्रतिज्ञा
करता हूं कि शोक नहीं करूंगा ।

सर०—अच्छा तेरी इच्छा (ललित रमणी से) प्रिय
पुत्री इधर आओ ।

ललित०—ओ आज्ञा (दंडवत् प्रणाम कर के प्राण छोड़
देती है)

नरवर०—अरे हाय यह क्या हो गया ! प्रिय पुत्री मृतक
कैसे हो गई । हा शोक (रोता है)

सूरदास—अरे अविचारी राजा मैं ने तुम्हें पहले ही
कहा था कि तुम्हें कष्ट होगा । उस समय मेरा कहा
न माना हठ की अब क्यों वृथा शोक करता है ।
जहां की वस्तु थी सो वहां गई ।

नरवर०—(रोते २) मैं ऐसा थोड़े ही जानता था कि मुझे प्रिय पुत्री का वियोग हो जायगा । आप सन्त महात्मा हो कृपा करके इसे पुनर्जीवित करदो ।

सूरदास—यह अब इस लोक में जीवित हो नहीं सकती क्योंकि यह पूर्व में हमारे नाथ श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द वृन्दावन विहारी की रास की सखी थी सो किसी अपराध के कारण इस ने तेरे घर जन्म लिया था अब पुनः वह रासरसिक से जामिली है । अतएव इस के लिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है ।

नरवर०—मैं कैसे जानूं ? मुझे आप के कथन का निश्चय कैसे हो ?

सूरदास—अच्छा तो यह ले तू स्वयं देख ले अपनी ललित रमणी के पुण्य प्रभाव से उसे लीला में प्रवृत्त हुई के दर्शन सावधान हो के कर ले ।

दोहा—वृन्दावन में रास रच्यो निज जन सुख दायक ।

ललित रमणी संग लीये शोभित नट नागर नायक ॥

(परदा फटता है श्याम सुन्दर की रास क्रीड़ा में ललित रमणी के दर्शन होते हैं । सब आश्चर्य में आ भीचक से रहे जाते हैं । शनैः २ यवनिका पतन होती है ।)

इति द्वितीय अंक समाप्त ।

SRI JAGADGURU VISHNUPADHYA
JNANA SIMHASANA JNANANAND
LIBRARY.

Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 322

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तैयार है ! दिल्ली दरबार के लिये !! तैयार है !!

शीत काल की बहार ।

देशाटन करने वालों के सुभीते के लिये

विचित्र मनोहर चूलहा और अंगीठी ।

इस की सुन्दरता व उपयोगिता सराहने योग्य है आप इस को देख कर जब तक अपने दृष्ट मित्रों को न दिखा लेंगे तब तक आप के हृदय के हर्ष की तरंगें शान्त न होंगी । यह स्वदेशी कारीगरी का वह नमूना है कि जिस की प्रशंसा अच्छे र इनजीनियरों ने की है । आप इसे कोयले जलाने की अंगीठी बना सकते हैं । कोयलों के अभाव में लकड़ी जलाने का चूलहा भी बना सकते हैं और कार्य कर लेने के पश्चात् बिछोनों के बीटे की तरह समेट के बटुये में रख लीजिये मजाल क्या कि कोई जान सके कि आप के पास कोई चूलहा या अंगीठी है ।

शीतकाल में अग्नि सेकने के लिये अगाड़ी रखने से स्थान की शोभा को बढ़ाता है । दूसरे बाजारी चूलहों से आधे कोयलों के खर्च में दूनी देर तक इस में अग्नि विद्यमान रहती है । मजबूती और मनोहरता देखे ही बन आती है । लिखने लिखाने से नहीं ।

प्रारम्भ में इस के प्रचार बढ़ाने के लिये हम उपरोक्त गुण संयुक्त चूलहों को अल्प मूल्य में घर बैठे पहुँचा देने को तैयार हैं ।

गुल्म-लोहे का पीतल का ताँवे का गंगा जसनी

१॥)

३॥)

४)

३॥)

जरसन सिलवर का अभी बन रहा है ।

पत्र इत्यादि इस पते पर भेजिये:—

आत्मारामात्मज वल्लभदास

ठि० सेठ गोवर्धनदास की मारकेट

मु० कराची ।

Printed by K. Hanumant Singh at the "Rajput Anglo-Oriental Press,"
Agra.